मासिक समाचारपत्र ● पूर्णांक 112 ● वर्ष 12, अंक 7 ● सितम्बर 2022 ● दस रुपये ● 16 पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

बिलकिस बानो केस : भाजपा और संघ की बेशर्मी की पराकाष्ठा 5

मज़दूरों और मेहनतकशों की मुक्ति को समर्पित महान क्रान्तिकारी और चिन्तक थे हमारे भगतसिंह 7

ताइवान को लेकर अमेरिका व चीन के बीच तेज़ होती अन्तर-साम्राज्यवादी होड़ 13

बेरोज़गारी की विकराल स्थिति

पूँजीवादी व्यवस्था का आर्थिक संकट और मोदी सरकार की पूँजीपरस्त नीतियाँ हैं इसकी ज़िम्मेदार

आज हमारे देश में बेरोज़गारी की जो हालत है, वह कई मायने में अभूतपूर्व है। मोदी सरकार की पूँजीपरस्त नीतियों की क़ीमत देश की मेहनतकश जनता कमरतोड़ महँगाई और विकराल बेरोज़गारी के रूप में चुका रही है। इन दोनों का नतीजा है कि हमारे देश में विशेष तौर पर पिछले आठ वर्षों में ग़रीबी में भी ज़बर्दस्त बढ़ोत्तरी हुई है। हम मेहनतकश लोग जानते हैं कि जब भी बेरोज़गारी, महँगाई और ग़रीबी का क़हर बरपा होता है, तो उसका ख़ामियाज़ा भुगतने वाले सबसे पहले हम लोग ही होते हैं। क्योंकि पूँजीपति और अमीर वर्ग अपने मुनाफ़े की हवस से पैदा होने वाले आर्थिक संकट का बोझ भी हमारे ऊपर ही डाल देते हैं। इस बार भी ऐसा ही हो रहा है। जो आर्थिक संकट पिछले 15 वर्षों से समूची पूँजीवादी दुनिया को अपनी जकड़ में लिये हुए है, उसकी सबसे ज़्यादा क़ीमत दुनियाभर में मज़दूर वर्ग और मेहनतकश आबादी ही चुका रही है। वास्तव में, यदि काम करने योग्य इन्सान हैं, विकास की आवश्यकता है, प्राकृतिक संसाधन और तकनोलॉजी है, तो फिर कोई वजह नहीं है कि बेरोज़गारी हो। लेकिन ऐसा केवल तभी हो सकता है कि जबकि एक ऐसी आर्थिक व्यवस्था हो जिसका मक़सद मुट्ठीभर पूँजीपतियों का मुनाफ़ा सुनिश्चित करना न हो, बल्कि सारे समाज की समस्त आवश्यकताओं को पूरा करना और सभी इन्सानों के

सम्पादकीय

जीवन को अधिक से अधिक सुन्दर बनाना हो। लेकिन एक ऐसी व्यवस्था जिसके केन्द्र में मुट्ठीभर धन्नासेठों का मुनाफ़ा हो, वहाँ 40 करोड़ मज़दूरों से 12 से 14 घण्टे काम करवाना, उन्हें मुश्किल से जीने की ख़ुराक के बराबर मज़दूरी देना ताकि वे अगले दिन फिर से आकर खट सकें और धन्नासेठों की तिजोरियों को भर सकें, व्यापक बेरोज़गार आबादी का इस्तेमाल रोज़गारशुदा मेहनतकशों की आमदनी को कम करने के लिए करना आम बात है। यही पूँजीवादी व्यवस्था है जिसके मूल में उत्पादन व उपभोग के साधनों पर मुट्ठीभर पूँजीपतियों की इजारेदारी और दूसरी ओर अपनी श्रमशक्ति को बेचने के लिए मजबूर करोड़ों-करोड़ मज़दूर आबादी है। समूचा उत्पादन तो यह मज़दूर आबादी अपनी सामूहिक मेहनत से सामाजिक तौर पर करती है, लेकिन उसके फलों को हड़प लेने का काम मुट्ठीभर पूँजीपतियों की आबादी करती है। उत्पादन समाज की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए योजनाबद्ध ढंग से नहीं होता है, बल्कि मुनाफ़े की हवस में अन्धे पूँजीपतियों की अराजकतापूर्ण प्रतिस्पर्धा की प्रक्रिया में होता है। नतीजतन, हमारे समाज में अभाव और प्रचुरता दोनों ही मौजूद होते हैं, आर्थिक मन्दी नियमित तौर पर आती है, बच्चे भूख से मरते हैं, इसलिए नहीं कि अनाज की कमी है, बल्कि इसलिए अनाज ज़रूरत से ज़्यादा पैदा होता है, 18 करोड़ लोग बेघर हैं, और दूसरी तरफ़ करोड़ों-करोड़ मकान बनने के बाद पड़े सड़ रहे हैं, लेकिन उन्हें ख़रीदने के लिए ख़रीदार नहीं हैं। यह है इस व्यवस्था की सच्चाई।

आज बेरोज़गारी के जो हालात हैं, वे कोई प्राकृतिक आपदा नहीं हैं और न ही वे आकस्मिक तौर पर संयोग से पैदा हुई कोई चीज़ है। यह बेरोज़गारी भी इसी अराजक और मुनाफ़ाख़ोर पूँजीवादी व्यवस्था की नैसर्गिक पैदावार है। पहले हम बेरोज़गारी के कुछ प्रातिनिधिक आँकड़ों पर निगाह डालेंगे और फिर देखेंगे कि किस प्रकार उसके पीछे पूँजीवादी व्यवस्था

(पेज 9 पर जारी)

बेरोज़गारी और आर्थिक संकट के दौर में बढ़ती आत्महत्याएँ

आत्महत्या करने वाला हर चौथा इन्सान दिहाड़ी मज़दूर

– भारत

पिछले साल का कोरोना काल आपको याद होगा। ऑक्सीजन, दवाइयों, बेड की कमी के कारण लोग मारे जा रहे थे। गंगा तक इन्सानों की लाशों से अट गयी थी और श्मशानों के आगे लम्बी-लम्बी क़तारें लगी थीं। इसमें मौत के गर्त में समाने वाले ज़्यादातर मेहनतकश तबक़े के लोग थे। मोदी सरकार इस क़त्लेआम को अंजाम देकर आपदा में अवसर निकालने में लगी हुई थी। इसके साथ ही पूरी पूँजीवादी व्यवस्था द्वारा मज़दूरों की जा रही हत्याओं के आँकड़ों में और इज़ाफ़ा हो गया।

हाल ही में जारी नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो (एनसीआरबी) की रिपोर्ट में यह सामने आया है कि साल 2021 में भारत में जिन 1,64,033 लोगों ने आत्महत्या की उसमें से 25.6 प्रतिशत दिहाड़ी मज़दूर थे। एनसीआरबी की नवीनतम रिपोर्ट के मुताबिक़ साल 2021 में कुल 42,004 दिहाड़ी मज़दूरों ने आत्महत्या की, इनमें 4,246 महिलाएँ भी शामिल थीं। रिपोर्ट के मुताबिक़ 42,004 दिहाड़ी मज़दूरों की आत्महत्याओं में सबसे ज़्यादा मामले तमिलनाडु (7673), महाराष्ट्र (5270), मध्य प्रदेश (4657), तेलंगाना (4223), केरल (3345) और गुजरात (3206) से थे। 2020 में कुल 37,666 दिहाड़ी मज़दूरों ने आत्महत्या की थी। इस साल इस वर्ग में हुई आत्महत्या की घटनाओं में क़रीब 11 प्रतिशत बढ़ोत्तरी हुई है।

ऐसे में कुछ लोग सोच सकते हैं (जो कि पक्के तौर पर मूर्ख और कूपमण्डूक कहे जा सकते हैं) कि यह तो आत्महत्या है, इसमें सरकार या व्यवस्था का क्या लेना देना। पर यहाँ असल सवाल यह है कि उन्हें इस हालात तक पहुँचाने के लिए दोषी कौन है? यह सरकार और पूँजीवादी निज़ाम जो मज़दूरों की बुनियादी ज़रूरतों तक को छीनकर, उन्हें भूखों मरने के लिए छोड़ देता है। आज महँगाई, बेरोज़गारी जो अपने चरम पर है, इसका सबसे ज़्यादा असर दिहाड़ी मज़दूरों पर होता है।

लेबर चौक पर जब मज़दूर खड़े होते हैं, मुश्किल से कभी कोई काम आता है तो सभी मज़दूर उसे किसी भी हाल में हासिल करना चाहते हैं। पर अन्त में काम मिलता है किसी एक को ही बाक़ी ख़ाली हाथ लौट जाते हैं। कभी पन्द्रह दिन कभी बीस दिन, इससे अधिक काम मिलना मुश्किल हो जाता है। दिहाड़ी भी 300-400 ही है, उसी में पूरे परिवार का पेट पालना

(पेज 2 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

आत्महत्या करने वाला हर चौथा इन्सान दिहाड़ी मज़दूर

(पेज 1 से आगे)

होता है, ज़रूरतें पूरी करनी होती हैं। पर आज तो सिलेण्डर भरवाने और सब्ज़ी ख़रीदने में ही सारे पैसे ख़त्म हो जाते हैं। फिर कुछ दिन काम नहीं मिलता तब स्थिति उधार लेने वाली आ जाती है। फिर धीरे-धीरे क़र्ज़ कम होने की बजाय बढ़ता जाता है। फिर इन कारणों से लड़ाई-झगड़े, तनाव बढ़ता जाता है। इस स्थिति से देश की बड़ी मज़दूर आबादी गुज़र रही है। पर इसमें से कुछ मज़दूर अकेले होने के कारण इस स्थिति का सामना नहीं कर पाते और उन्हें आत्महत्या के लिए मजबूर होना पड़ता है। इसलिए इसके लिए सिर्फ़ और सिर्फ़ यह पूँजीवादी व्यवस्था ही ज़िम्मेदार है जो मज़दूरों की ज़िन्दगी लील लेती है।

इसके साथ ही राजनीतिक कूपमण्डूकों को भी आइना दिखाने के लिए एक तथ्य और जुड़ गया जो इस तर्क की पुष्टि करता है कि धनी किसान ही खेतिहर मज़दूरों का शोषण करने में सबसे आगे हैं। इस रिपोर्ट में "कृषि क्षेत्र में लगे व्यक्तियों" की श्रेणी भी थी, जिसमें खेतिहर मज़दूरों की आत्महत्या के आँकडें थे, जिसकी संख्या में पिछले साल के मुक़ाबले वृद्धि हुई है। "कृषि क्षेत्र में लगे व्यक्तियों" की श्रेणी में साल 2021 में 10,881 लोगों ने आत्महत्या की। इनमें से 5,318 किसान थे और 5,563 खेतिहर मज़दूर। इन खेतिहर मज़दूरों की आत्महत्या का कारण धनी किसानों-कुलकों द्वारा किया गया भयंकर और अमानवीय शोषण ही है, जो उन्हें मुनाफ़े, सूद, लगान हर तरीक़े से लूटते हैं। खेतिहर मज़दूरों को न्यूनतम वेतन तक नहीं मिलता, बाक़ी कोई श्रम क़ानून लागू होंगे ये बात तो भूल जाइए। कई "कामरेडगण" बड़े ही "यथार्थवादी" तरीक़े से 'ललकारते' हुए 'फ़ार्मर-मज़दूर एकता ज़िन्दाबाद' के नारे लगाते थे, पर जब उन्हीं खेतिहर मज़दूरों के अधिकार छीने जाते हैं तो वे चुप्पी साधकर बैठ जाते हैं! यही कारण था कि किसान आन्दोलन में खेतिहर मज़दूरों के अधिकार व उनकी माँगों को कोई तवज्जो नहीं दी गयी। इससे यही बात साबित होती है कि बड़े किसान-कुलकों व खेतिहर मज़दूरों में कोई एकता नहीं बन सकती, क्योंकि एक शोषक वर्ग का हिस्सा है तो दूसरा शोषित वर्ग का।

आत्महत्याओं का बढ़ना पूँजीवाद के जर्जर होते जाने की निशानी है। फ़ासीवादी मोदी सरकार के आने के बाद से महँगाई, बेरोज़गारी की तरह ही आत्महत्याओं में भी वृद्धि हुई है। पिछले साल कोरोना काल में जो क़हर ढाया गया, उससे मेहनतकशों के जीवन में तबाही आ गयी। इन सबको रोकने का एक ही तरीक़ा है, मेहनतकशों की वर्ग एकजुटता। यह पूँजीवादी व्यवस्था हम मेहनतकशों के ख़ून के दम पर ही अपनी अय्याशी की मीनारें खड़ी करती है। इसलिए हमें इसे ध्वस्त करके ही ऐसा समाज बनाना होगा, जिसमें आत्महत्या के भौतिक आधार का ही ख़त्मा हो जाये।

क्या आप मज़दूर बिगुल के रिपोर्टर बनेंगे?

क्या आप चाहते हैं कि मज़दूरों के जीवन, उनके काम के हालात, उनकी समस्याओं और संघर्षों के बारे में आप जैसे देश के करोड़ों मज़दूरों-कर्मचारियों को और देश के आम नागरिकों को पता चले? क्या आप चाहते हैं कि मज़दूरों की ख़बरें जो हर मीडिया से ग़ायब रहती हैं, वे मज़दूरों के अपने अख़बार के ज़रिए लोगों तक पहुँचें?

तो क़लम उठाइए और अपने कारख़ाने, दफ़्तर या बस्ती की रिपोर्टें, लेख, पत्र या सुझाव हमें भेजिए।

'मज़दूर बिगुल' आपका अपना अख़बार है। यह उन तमाम मेहनतकशों की आवाज़ है जिनकी बात इस देश के दर्जनों टीवी चैनलों और हज़ारों अख़बारों में कहीं सुनायी नहीं देती, मगर जिनकी मेहनत के बग़ैर यह देश एक दिन भी चल नहीं सकता।

आपको अगर टाइप करने में समस्या है तो काग़ज़ पर लिखकर उसकी फ़ोटो लेकर हमें व्हाट्सऐप पर भेज दीजिए। आप फ़ोन पर, व्हाट्सऐप पर या बिगुल के साथियों से मिलकर भी उन्हें जानकारियाँ दे सकते हैं। इसके बारे में कुछ भी जानने के लिए हमसे सम्पर्क करिए या अपने इलाक़े में 'मज़दूर बिगुल' बाँटने वाले साथियों से बात करिए।

आप इन तरीक़ों से अपनी बात हमारे तक पहुँचा सकते हैं :

डाक से भेजने का पता : **मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना, डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020**

ईमेल से भेजने का पता : **bigulakhbar@gmail.com**

व्हाट्सऐप नम्बर : 9721481546

मज़दूर बिगुल की सदस्यता, अंक ख़रीदने या सहयोग राशि के भुगतान के लिए अब आप इस QR कोड या UPI आईडी का उपयोग करके गूगलपे, फ़ोनपे या पेटीएम से भी भुगतान कर सकते हैं।

bigul akhbar

Punjab National Bank
3787

UPI ID: bigulakhbar@okicici

"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।" – लेनिन

'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है।

यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।
बिगुल के लिए सहयोग भेजिए/जुटाइए।
सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिए।

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट
www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। बिगुल के प्रवेशांक से लेकर नवम्बर 2007 तक के सभी अंक भी वेबसाइट पर क्रमशः उपलब्ध कराये जा रहे हैं।
मज़दूर बिगुल का हर नया अंक प्रकाशित होते ही वेबसाइट पर निःशुल्क पढ़ा जा सकता है।
आप इस फ़ेसबुक पेज के ज़रिए भी 'मज़दूर बिगुल' से जुड़ सकते हैं :
www.facebook.com/MazdoorBigul

'मज़दूर बिगुल' का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भर्ती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

प्रिय पाठको,

बहुत-से सदस्यों को 'मज़दूर बिगुल' नियमित भेजा जा रहा है, लेकिन काफ़ी समय से हमें उनकी ओर से न कोई जवाब मिला और न ही बकाया राशि। आपको बताने की ज़रूरत नहीं कि मज़दूरों का यह अख़बार लगातार आर्थिक समस्या के बीच ही निकालना होता है और इसे जारी रखने के लिए हमें आपके सहयोग की ज़रूरत है। अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया जल्द से जल्द अपनी सदस्यता राशि भेज दें। आप हमें मनीऑर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं।

मनीऑर्डर के लिए पता :
मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
बैंक खाते का विवरण : Mazdoor Bigul
खाता संख्या : 0762002109003787, IFSC: PUNB0185400
पंजाब नेशनल बैंक, अलीगंज शाखा, लखनऊ

सदस्यता : वार्षिक : 125 रुपये (डाकख़र्च सहित); आजीवन : 3000 रुपये

मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं :
फ़ोन : 0522-4108495, 9721481546
ईमेल : bigulakhbar@gmail.com
फ़ेसबुक : www.facebook.com/MazdoorBigul

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 फ़ोन: 9721481546
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-90, फ़ोन: 8860792320
ईमेल	: bigulakhbar@gmail.com
मूल्य	: एक प्रति – 10/- रुपये वार्षिक – 125/- रुपये (डाक ख़र्च सहित) आजीवन सदस्यता – 3000/- रुपये

‘फ़्रण्ट लाइन वर्कर्रों’ के नाम पर प्रधानमंत्री मोदी की नयी जुमलेबाज़ी !

– वृषाली

15 अगस्त को लाल क़िले की प्राचीर से प्रधान “सेवक” महोदय उर्फ़ नरेन्द्र मोदी ने कोरोना महामारी के दौरान कार्यरत ‘फ़्रण्ट लाइन वर्कर्स’ की जमकर “सराहना” की। इस दफ़े लाल क़िले पर आँगनवाड़ीकर्मियों, आशाकर्मियों व एनएचएम कर्मचारियों को बतौर विशेष “अतिथि” आमंत्रित भी किया गया था। लेकिन प्रधानमंत्री महोदय जी भूल गये कि कौड़ियों के दाम ठेके पर दे दिये गये लाल क़िले पर चढ़कर की गयी ऐसी हवबाज़ी से फ़्रण्टलाइन वर्करों का गुज़ारा नहीं चलता! और न ही थालियों-तालियों, धूप-अगरबत्ती की नौटंकी से ही हम लाखों कामगारों को कुछ हासिल हुआ था। फ़्रण्टलाइन वर्करों की तारीफ़ों के पुल बाँधने वाली इस निहायत झूठी सरकार ने आज तक कोविड के कारण मौत का शिकार होने वाले कर्मियों की असल संख्या तक जारी नहीं की है! 22 जुलाई 2022 को स्मृति ईरानी ने एक लिखित जवाब में यह कहा कि कोविड से मरने वाली आँगनवाड़ीकर्मियों की संख्या केन्द्र सरकार के पास नहीं है! केन्द्र सरकार ने कोविड से मृत्यु की स्थिति में प्रधानमंत्री ग़रीब कल्याण योजना के तहत फ़्रण्टलाइन वर्करों को 50 लाख बीमा राशि देने की घोषणा की थी। लेकिन 50 लाख की इस मुआवज़ा राशि के साथ लगे हुए ‘किन्तु’ और ‘परन्तु’ का कोई अन्त नहीं था। सरकार के अनुसार अब तक 1,616 परिवारों को बीमा की यह राशि दी गयी है।

पहला सवाल, कोविड काल में क्या केवल 1,616 फ़्रण्टलाइन वर्करों ने ही अपनी जान गँवायी है?! यह बात हज़म नहीं होती है। कोविड से जुड़े आँकड़े छुपाने में तो केन्द्र सरकार ने महारत ही हासिल की हुई है! असल में तो हर क़िस्म के आँकड़ों को ही छिपाने, उनमें फेरबदल करने में, तोड़ने-मरोड़ने में यह सरकार बेहद पारंगत है! दूसरा सवाल, क्या कोविड से संक्रमण और मौत की स्थिति में हर फ़्रण्टलाइन वर्कर को यह बीमा राशि अदा की गयी? नहीं! बीमे की राशि के लिए वही योग्य हुए जो कोविड मरीज़ों के सीधे सम्पर्क में थे व जिनके कोविड से ख़तरा होने की आशंका थी! ज़्यादातर मसलों में मुआवज़े की अर्ज़ी ही ख़ारिज कर दी गयी और कुछ मसलों में यह प्रक्रिया अब तक अटकी हुई है। मुम्बई में नवी मुम्बई म्युनिसिपल काउंसिल के आदेश पर प्राइवेट क्लिनिक खोलने के बाद कोरोना से ग्रस्त होकर मरने वाले डॉक्टर की पत्नी के मुआवज़े की माँग को यह कहकर सरकार ने ख़ारिज कर दिया कि डॉक्टर को एनएमएमसी ने क्लिनिक चालू करने का आदेश दिया था, कोरोना के मरीज़ों की देखभाल का नहीं! देशभर में ऐसे हज़ारों मसले होंगे जिनमें आर.टी.पी.सी.आर. टेस्ट का नतीजा अनुपलब्ध होने या कोविड की प्रत्यक्ष ड्यूटी अदा न करने का हवाला देकर मुआवज़े की राशि का भुगतान नहीं किया गया। सरकार ने इस बीमा योजना को मार्च 2021 में समाप्त कर दिया था जिसे कई विरोधों के बाद पुनः शुरू किया गया था। आज के समय में फिर यह बीमा योजना ही समाप्त कर दी गयी है। जैसे फ़्रण्टलाइन वर्करों को अब कोविड से बचाने के लिए साक्षात कर्ण ने अपने कवच और कुण्डल दे दिये हैं! अतार्किकता, अन्धविश्वास और ढकोसले परोसने वाली इस सरकार से इससे अलहदा कोई उम्मीद भी नहीं की जा सकती है।

‘फ़्रण्टलाइन वर्करों’ को जान हथेली पर रखने के लिए “सम्मान”, ताली-थाली, फूल-पत्तियों के अलावा कुछ नहीं मिला। मुआवज़ा मिलना तो दूर की कौड़ी है, कई राज्यों में तो फ़्रण्टलाइन वर्करों को समय पर वेतन न मिलने की वजह से प्रदर्शन करने पड़े। कोविड के दौरान ख़ास तौर पर ठेके पर भर्ती किये गये स्वास्थ्यकर्मियों को आज बाहर निकाल दिया गया है। वहीं देश के दूरस्थ इलाक़ों में भी सरकारी योजनाओं, कोविड टीकाकरण की पहुँच बनाने वाली स्कीम वर्करों की बात करें तो प्रधानमंत्री महोदय ने 2018 में ही उनके लिए एक मामूली-सी मानदेय बढ़ोत्तरी की घोषणा की थी। संसद में इसी घोषणा के कई बार ढोल पीटे गये लेकिन 4 साल गुज़र जाने के बावजूद इस राशि का कहीं कोई भुगतान नहीं किया गया है। महिला स्कीम वर्करों का ‘स्वयंसेविकाओं’ के नाम पर वर्षों से शोषण होता आया है, उनसे बेगारी करवाकर उन पर ज़िम्मेदारियों का बोझ बढ़ाकर भाजपा सरकार ने ताली और थालियाँ बजवाकर उन्हें पुरस्कृत करने की नयी तरकीब इज़ाद की है! कौन नहीं जानता कि देशभर में स्कीम वर्कर कर्मचारी के दर्जे की माँग को लेकर संघर्षरत हैं। दिल्ली का उदाहरण ही देखिए। ‘दिल्ली स्टेट आंगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन’ के नेतृत्व में 38 दिनों तक चली आँगनवाड़ीकर्मियों की ऐतिहासिक हड़ताल का ज़िक्र कई बार हुआ है। इस हड़ताल को तोड़ने के लिए भाजपा ने राज्यपाल के माध्यम से केजरीवाल के साथ गलबहियाँ कर हेस्मा लगाने की साज़िश को अंजाम दिया था। स्कीम वर्करों से “हमदर्दी” रखने वाली यह सरकार सिर्फ़ कोरे जुमले फेंक सकती है, उन्हें नियमित नहीं कर सकती! “प्रधान सेवक” महोदय और केन्द्र पर सत्तासीन भाजपा के लिए जुमले फेंकना बड़ी आम-सी बात है। लेकिन “सम्मान” देने का ढोंग करते हुए हक़ मार लेना और बेशर्मी के साथ इसका ढिंढोरा पीटने का काम भाजपा सरकार से बेहतर कोई और सरकार नहीं कर सकती है। केन्द्र सरकार पहले इसके आँकड़े जारी करे कि अब तक कितने फ़्रण्टलाइन वर्करों की कोविड की वजह से मृत्यु हुई है। फ़्रण्टलाइन पर काम कर रही अधिकांश आँगनवाड़ी और आशाकर्मियों व सफ़ाईकर्मियों को तो सरकार की ओर से कोई सुरक्षा सामग्री तक मुहैय्या नहीं करवायी गयी। 2020 की ऑक्सफ़ैम की 4 राज्यों में सर्वे रिपोर्ट के अनुसार 25% कर्मियों को मास्क नहीं दिये गये, केवल 23 प्रतिशत कर्मियों को बॉडी सूट दिये गये व केवल 62 प्रतिशत को ग्लव्स उपलब्ध करवाये गये। यही हाल आँगनवाड़ीकर्मियों का भी था। वॉटर ऐड नामक एक संस्था द्वारा किये सर्वे के अनुसार भारत में 40 प्रतिशत सफ़ाईकर्मियों के लिए हाथ धोने के साबुन तक के इन्तज़ाम नहीं थे। इण्डिया डेवलपमेण्ट रिव्यु के असम, मध्यप्रदेश, दिल्ली और मुम्बई में किये सर्वे के अनुसार 90 प्रतिशत सफ़ाईकर्मियों के पास ज़रूरी साधन और कोविड-19 टेस्ट की सुविधा तक नहीं थी। कोविड से बचाव के सभी इन्तज़ाम न होने के कारण डॉक्टरों व नर्सों को भी पीपीई किट के अभाव में काम करना पड़ा था।

आज़ादी के (अ)मृत महोत्सव पर फ़्रण्टलाइन कर्मियों की पीठ थपथपाने वाली सरकार ने हक़ीक़त में उन्हें रक्षात्मक उपकरणों के अभाव में काम करने को मजबूर किया और कोविड से संक्रमित होने की स्थिति में उन्हें उनके हाल पर छोड़ दिया। जिस देश में स्वास्थ्य सेवा पर सरकार जीडीपी का महज़ 1.8 प्रतिशत ख़र्च करती हो वहाँ फ़्रण्टलाइन कर्मियों को समय पर व बेहतर और भत्ते के बदले ताली और थाली का झुनझुना ही थमाया जा सकता है। कोविड महामारी के दौरान स्वास्थ्य सेवा पर होने वाले ख़र्च का बड़ा हिस्सा निजी क्षेत्र में किया गया। सरकारी स्वास्थ्य सेवा के पहले से ही लचर ढाँचे को कोविड माहमारी ने बड़ा धक्का पहुँचाया। फ़्रण्टलाइन वर्करों को प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के भाषण सुनने की “ख़ुशनसीबी” के बदले समय पर रक्षात्मक उपकरण मिले होते तो स्थिति कुछ और होती। प्रधानमंत्री महोदय के निरे भाषणों से न ही फ़्रण्टलाइन वर्करों की गृहस्थी चल सकती है न उनके काम का बोझ कम हो सकता है। फ़्रण्टलाइन वर्करों को “सम्मान” के नाम पर पाखण्ड नहीं चाहिए बल्कि बेहतर कार्यस्थिति व स्वास्थ्य सेवाओं की गुणवत्ता में सुधार तथा स्टाफ़ की भर्ती चाहिए। ज़मीनी स्तर पर कार्यरत आँगनवाड़ी व आशा स्कीम वर्करों को कर्मचारी का पक्का दर्जा और सम्मानजनक वेतन का हक़ चाहिए। जुमलों और ख़ैरात की नौटंकी को हम भली प्रकार से समझते हैं!

उत्तर-पश्चिम दिल्ली के छोटे कारख़ानों में बेहद बुरी स्थितियों में खटती स्त्री मज़दूर

उत्तर-पश्चिमी दिल्ली में छोटे कारख़ानों का जालनुमा फैलाव देखने को मिलता है। ख़ासकर ये कारख़ाने मज़दूर बस्तियों के इर्द-गिर्द बसाये गये हैं ताकि सस्ते श्रम का दोहन किया जा सके। ऐसा ही एक जाल शाहबाद-डेरी से बवाना के आसपास के क्षेत्र में भी देखने को मिलता है। इन कारख़ानों में मुख्यतः धातु छँटाई ,पैकिंग इत्यादि का काम होता है। जिसमें तांबा, पीतल, चाँदी इत्यादि की छँटाई का काम किया जाता है।

इन कारख़ानों में काम करने वाले मज़दूरों से नियमित प्रकृति के रोज़गार के आधार पर काम नहीं करवाया जाता बल्कि यहाँ काम करने वाले मज़दूर दिहाड़ी पर काम करते हैं। साथ ही काम की कोई निश्चितता नहीं होती, कारख़ाना मालिक जब चाहे मज़दूरों को काम से निकाल सकता है। इन कारख़ानों में कोई भी श्रम क़ानून लागू नहीं होते हैं, कारख़ानों में कोई सुरक्षा के नियम लागू नहीं होते और न ही न्यूनतम वेतन दिया जाता है। इन कारख़ानों में काम करने वाले मज़दूरों की संख्या बहुत कम होती है जिसके कारण मज़दूरों का शोषण बड़े कारख़ानों के मुक़ाबले ज़्यादा होता है। प्रतिदिन की दिहाड़ी 220 से लेकर 250 तक दी जाती है, दिहाड़ी के साथ एक वक़्त की चाय दी जाती है जिसकी गुणवत्ता ऐसी है कि बहुत-से मज़दूरों ने चाय पीना छोड़ दिया है। इन कारख़ानों में से कई में युवा स्त्री मज़दूर काम करती हैं। यहाँ भी मज़दूर महिलाओं की स्थिति बहुत भयंकर है। उनके साथ यहाँ दोयम दर्जे का बर्ताव देखने को मिलता है एक तो सस्ती दर पर उनके श्रम का दोहन किया जाता है, साथ ही अपने इन हालातों पर ये मज़दूर मालिक के ख़िलाफ़ आवाज़ न उठा सकें, उसके लिए मज़दूरों के बीच में कई तरीक़े से मज़दूरों को कई दर्जे में विभाजित किया जाता है ताकि इन कारख़ानों में मज़दूर एकजुट न हो सकें। यहाँ कम वेतन पर मज़दूर महिलाओं को काम करने के पीछे का तर्क यही दिया जाता है कि ‘कहीं दूर नहीं जाना है, पास तो है, इसलिए जो मिल रहा है ले लो!’

इन कारख़ानों को सरकार व पूँजीपतियों ने सोचे-समझे तौर पर इन मज़दूर बस्तियों के किनारे बसाया है। यहाँ मज़दूर महिलाएँ छँटाई का काम 8 घण्टे से लेकर 10 घण्टे तक करती हैं। धातु छँटाई भी कई तरीक़े की होती है। पहले चरण में धातु के टुकड़े इतने बड़े होते हैं कि उन्हें आसानी से अलग किया जा सकता है। इसलिए इस चरण में काम करने वाले मज़दूरों को कम दिहाड़ी दी जाती है। दूसरे चरण में महीन धातु होने के कारण धातु को केमिकल में डुबाकर दिया जाता है। दूसरे चरण में बिना केमिकल के छँटाई बहुत मुश्किल होती है। ये केमिकल इतने घातक होते हैं कि काम करने वाले मज़दूरों के हाथों पर छाले पड़ जाते हैं। केमिकल में पड़े धातु की छँटाई करने के लिए कोई भी सुविधा नहीं दी जाती, न ही कोई सुरक्षा उपकरण मुहैया कराये जाते हैं। नतीजतन इन मज़दूरों की ज़िन्दगी धीरे-धीरे कई बीमारियों की जकड़न में आती जाती है।

इन महिला मज़दूरों को कोई छुट्टी नहीं मिलती। इन छोटे कारख़ानों के भीतर महिला मज़दूरों की स्थिति बहुत भयंकर है, धातु की छँटाई का काम ज़मीन पर बैठ कर किया जाता है, बैठने के लिए कोई चटाई वग़ैरह नहीं दी जाती। साथ ही इन मज़दूरों को दीवार से सटकर तक नहीं बैठने दिया जाता। इसके साथ इन मज़दूरों के लिए कारख़ानों में कोई बुनियादी सुविधा नहीं है, न तो पीने का साफ़ पानी मिलता है और न ही इस चिलचिलाती धूप में पंखे की हवा। कई मज़दूरों से बात करते हुए पता चला कि महिला मज़दूरों के लिए कोई शौचालय की सुविधा तक नहीं है, लंच के समय 10 मिनट के लिए शौचालय का गेट खोला जाता है उसके बाद बन्द कर दिया जाता है यानी 8 से 10 घण्टे काम करते हुए ये महिला मज़दूर सिर्फ़ एक बार शौचालय जा सकती हैं, इन मज़दूरों से बात करते हुए यह भी पता चला कि लम्बे समय तक शौचालय न जाने कारण इन मज़दूर महिलाओं को पेट से सम्बन्धित कई दिक़्क़तें हो रही हैं। धातुओं को साफ़ करते समय एक अजीब-सी गंध धातु में रहती है जिसके कारण सांस सम्बन्धी बीमारियाँ भी इन मज़दूरों में बेहद आम हो गयी हैं।

इन कारख़ानों की तरफ़ रुख़ मुख्य रूप से घरेलू कामगारों ने किया है क्योंकि घरेलू कामगारों को तो इससे भी कम में रोज़ खटना पड़ता है। इन मज़दूरों की काम के बाद तसल्ली से तलाशी ली जाती है। तलाशी कोई मेटल डिटेक्टर से नहीं बल्कि महिला सुपरवाइज़र करती है। इन कारख़ानों में मज़दूरों की हालत ज़्यादा बदतर है क्योंकि महिला मज़दूर होने के कारण तनख़्वाह से लेकर कई चीज़ों में इनके साथ ज़्यादती की जाती है। और ये सब कहीं दूर नहीं बल्कि केन्द्र से लेकर राज्य सरकार की नाक के नीचे हो रहा है क्योंकि कारख़ाना मालिक या तो ये ख़ुद तमाम नेता-मंत्री हैं या इन कारख़ाना मालिकों के प्रतिनिधि ही सत्ता में बैठे हैं।

– बिगुल संवाददाता

ऑटो सेक्टर के मज़दूरों की एक रिपोर्ट

– शाम

पिछले कुछ दिनों से गुड़गाँव पट्टी के ऑटो सेक्टर में एक हलचल पैदा हो गयी है। लगातार कम्पनियों में छँटनी, पैसे न दिये जाने, मज़दूरो की माँगें न माने जाने आदि के मामले सामने आ रहे हैं, जिसके विरोध में कई प्रदर्शन और हड़ताल भी हो रहे हैं। पिछले 3 महीने में धारूहेड़ा में हुण्डई मोबीस के मज़दूरों का धरना, जेएनएस के मज़दूरों की हड़ताल तथा पिछले महीने नपीनों के मज़दूरों की हड़ताल इसके उदाहरण हैं। अभी-अभी बेलसोनिका के मज़दूरों के साथ भी कई सारी घटनाएँ सामने आ रही हैं।

इस बीच गुड़गाँव क्षेत्र में काम कर रही ऑटोमोबाइल इण्डस्ट्री कॉण्ट्रैक्ट वर्कर्स यूनियन और गुड़गाँव मज़दूर संघर्ष समिति मज़दूरों के बीच लगातार सक्रिय रही है। तमाम धरनों व हड़तालों में शामिल होने के साथ-साथ मज़दूरों के बीच लगातार साप्ताहिक बैठक व मज़दूरों के अख़बार का वितरण किया जा रहा है। इतना ही नहीं मज़दूर इलाक़ों व मध्यवर्गीय इलाक़ों में कई क्रान्तिकारी पुस्तक प्रदर्शनियाँ भी लगायी गयी हैं। साथ ही समसामयिक व ज्वलन्त सामाजिक मुद्दों पर लगातार प्रदर्शनों में भी भागीदारी की गयी है। इनमें हाल ही में राजस्थान के जालौर में दलित बच्चे के उत्पीड़न, फ़रीदाबाद में बच्ची के साथ बलात्कार और हत्या तथा बिलकिस बानो के बलात्कारियों को रिहा करने के विरोध में हुए प्रदर्शन में हिस्सा लिया गया। पिछले महीने से मज़दूर दीवार पत्रिका 'मेहनतकश की आवाज़' की भी शुरुआत की गयी है।

इन कामों के साथ-साथ नपीनो की हड़ताल में ऑटोमोबाइल इण्डस्ट्री कॉण्ट्रैक्ट वर्कर्स यूनियन की सक्रिय भागीदारी रही। वहाँ मज़दूरों के साथ लगातार सम्पर्क बनाये गये तथा उन्हें लगातार आन्दोलनों के दौरान आनी वाली समस्याओं से अवगत कराया गया। उनसे पुरानी ग़लतियों से सीखने की बात भी की गयी। उन्हें यह भी बताया गया कि आज हमें ऐसी सभी मौक़ापरस्त व संशोधनवादी ट्रेड यूनियनों से बचने की ज़रूरत है, जो आन्दोलन को बर्बाद करने का काम करती हैं। अपने आन्दोलन को आम मज़दूरों के बीच ले जाने की ज़रूरत है, क्योंकि अगर हम सिर्फ़ क़ानूनी लड़ाई तक सीमित रहे तो किसी न किसी तरीक़े से प्रबन्धन और सरकार हमारी एकता को तोड़ने और आन्दोलन को ख़त्म करने की जुगत भिड़ा ही लेगी।

नपीनो की हड़ताल में भी यही देखने को मिला जब प्रबन्धन ने पुलिस बुलाकर मज़दूरों को फ़ैक्टरी से निकलने और हड़ताल ख़त्म करने पर मजबूर कर दिया। ज्ञापन देने से लेकर श्रम विभाग की मौजूदगी में कई बैठकें बुलायी गयीं, किन्तु कोई भी नतीजा नहीं निकला। अन्त में झूठा दिलासा देकर मज़दूरों को काम से निकाल दिया गया और अभी तक उन्हें वापस नहीं बुलाया गया है।

हाल के दिनों में ही बेलसोनिका के मज़दूरों के बीच भी हलचल शुरू हो गयी है। प्रबन्धन ने ऐसे शरारती तत्वों की भर्ती शुरू कर दी है जो जानबूझकर वैसे मज़दूरों से लड़ते हैं जो किसी भी तरह के हक़ की या यूनियन की बात करते हैं। बाद में शिकायत करने पर उल्टा मज़दूरों के ख़िलाफ़ ही कार्रवाई की जाती है। एक तरफ़ सरकार चार लेबर कोड के ज़रिए मज़दूरों पर नकेल कसने की तैयारी में है, वहीं दूसरी तरफ़ प्रबन्धन पहले ही अलग-अलग तिकड़म भिड़ाकर मज़दूरों का शोषण तेज़ कर रहा है।

यह हाल सिर्फ़ बेलसोनिका का नहीं बल्कि गुड़गाँव-धारूहेड़ा-मानेसर में ज़्यादातर फ़ैक्टरियों व कम्पनियों का है। चाहे गुण्डों को बुलाकर धमकियाँ देना हो या पुलिसिया दमन की कार्रवाई हो, ऐसे तमाम काम पिछले कुछ दिनों में बढ़ गये हैं। यह तो होना ही है जैसे-जैसे मुनाफ़े की औसत दर गिरेगी, महँगाई बढ़ेगी और छँटनियाँ शुरू होंगी, मज़दूरों के काम के घण्टे बढ़ाये जायेंगे, उनसे कम तनख़्वाह पर काम लिये जायेंगे। ऐसी परिस्थिति में मज़दूरों को संगठित करना और भी आवश्यक हो गया है।

यह सर्वविदित है कि ऑटो क्षेत्र सबसे उन्नत क्षेत्रों में से एक है, जिसके मज़दूर सबसे ज़्यादा उन्नत तकनोलॉजी पर काम करते हैं। नयी व उन्नत तकनोलॉजी पर काम करने के कारण उनकी चेतना भी एक स्तर तक विकसित होती है। वैसे भी इस पट्टी में ऑटो सेक्टर के आन्दोलनों का एक पुराना इतिहास भी रहा है। यही कारण है कि इन मज़दूरों में जूझने और लड़ने का माद्दा सापेक्षिक रूप से ज़्यादा है। आज हमें ज़रूरत है कि इन मज़दूरों के बीच लगातार काम किया जाये, उन्हें इस व्यवस्था की असलियत से अवगत कराया जाये। उनके बीच अध्ययन चक्र का जाल बिछा दिया जाये। फ़ैक्टरी की दीवारों के बाहर भी संघर्ष पहुँचाया जाये तथा पूरे ऑटो सेक्टर के मज़दूरों को एकजुट किया जाये।

बेलसोनिका में मज़दूरों की छँटनी व ठेका प्रथा के ख़िलाफ़ संघर्ष जारी है!

– शाम

पिछली 3 अगस्त को आई.एम.टी. मानेसर (गुड़गाँव) में स्थित बेलसोनिका ऑटो कम्पोनेण्ट इण्डिया प्राइवेट लिमिटेड के मज़दूरों द्वारा प्रबन्धन की मज़दूर विरोधी नीतियों के चलते दो बार दो घण्टे का टूल डाउन करने पर प्रबन्धन ने मज़दूरों को आठ दिन की वेतन कटौती का नोटिस जारी कर दिया था। बेलसोनिका मारुति के लिए कलपुर्ज़े बनाती है।

मज़दूरों ने टूलडाउन इसलिए किया था क्योंकि 28 जुलाई को यूनियन कार्यकारिणी के सदस्य दिनेश कुमार पर बसों को बाहर जाने से रोकने का सिक्योरटी गार्डों से झूठा आरोप लगवाया गया। दूसरे, जिस सिक्योरिटी गार्ड ने यूनियन पदाधिकारी पर झूठा आरोप लगाने से मना कर दिया था उसे और उसके बेटे को भी काम से निकाल दिया गया था। इससे पहले 23 जुलाई को छोटी-सी बात पर 5 मज़दूरों का पंच कार्ड बन्द कर दिया गया था और मज़दूरों को कारण बताओ नोटिस दिया गया था।

इससे पहले 20 मई को मज़दूरों के खाने-पीने में कटौती, एयर वॉशर (पंखों) को ठीक से व समय पर न चलाने और एक मज़दूर साथी विजेन्द्र को निलम्बित किये जाने के विरोध में क़रीब 36 घण्टे की भूख हड़ताल करनी पड़ी थी जिसके बाद सहायक श्रम आयुक्त की मध्यस्था में प्रबन्धन को समझौता करने के लिए मजबूर होना पड़ा था। विजेन्द्र को 20 से 23 मई तक इसलिए निलम्बित किया गया था कि ग़लती से डाई में दो पार्ट्स लग गये थे। यूनियन का कहना है कि प्रबन्धन हर छोटी-छोटी बात पर यूनियन के मज़दूरों को निशाना बना रहा है। साथ ही मज़दूरों को यूनियन के ख़िलाफ़ भड़काकर दरार पैदा करने की कोशिश कर रहा है। वेतन कटौती, पंच कार्ड बन्द करने, यूनियन पदाधिकारियों पर झूठे इल्ज़ाम लगवाने, मज़दूरों को निलम्बित करने, हवा, पानी और खाने की गुणवत्ता में कटौती, परिवहन सुविधा में दिक़्क़त करने जैसी उकसावे की कार्रवाइयों का कोई मौक़ा कम्पनी नहीं चूक रही है।

मैनेजमेण्ट की असली मंशा है स्थायी मज़दूरों की छँटनी करना जिसमें पुराने कैज़ुअल मज़दूर भी शामिल हैं। इसकी जगह पर नये 6 महीने या इससे भी कम अवधि के लिए ठेका मज़दूरों, निर्धारित अवधि रोज़गार (फ़िक्स टर्म इम्प्लायमेण्ट) और नीम ट्रेनी और डी.ई.टी. आदि श्रेणी के मज़दूरों की भरती करने का इरादा है। इनको न तो पी.एफ़., ई.एस.आई., न किसी प्रकार की सामाजिक सुरक्षा और न ही कोई यूनियन अधिकार देने की ज़रूरत होगी। यानी ऐसे अरक्षित मज़दूरों की भरती करना जो हमेशा असुरक्षा व अनिश्चितता की वजह से प्रबन्धन की मनमानी शर्तों पर काम करेंगे।

बेलसोनिका एक जापानी कम्पनी है जिसकी स्थापना 2006 में हुई थी। इसमें 1.18 बिलियन रुपये की पूँजी लगी हुई है जिसमें बेलसोनिका का 70 प्रतिशत और मारुति-सुज़ुकी का 30 प्रतिशत हिस्सा है। यह छोटी पैसेंजर गाड़ियों के कई कलपुर्ज़े बनाती है। इसमें लगभग 1100-1200 मज़दूर काम करते हैं जिनमें 680 स्थायी, 10 प्रोबेशन, लगभग 138 ठेका श्रमिक जिनको 6-7 वर्ष कार्य करते हो चुके हैं, लगभग 75 अप्रेण्टिस श्रमिक, लगभग 28 ट्रेनिंग श्रमिक व लगभग 250-300 श्रमिक ऐसे हैं जिनको 6 माह के लिए भर्ती किया गया है। लगभग 600 के आसपास ठेका, नीम ट्रेनिंग, प्रोबेशन व अप्रेण्टिस श्रमिक कार्यरत हैं। ये सभी श्रमिक मशीनों पर उत्पादन का काम करते हैं।

सस्ते मज़दूरों की भरती के पीछे कम्पनी प्रबन्धनों का क्या मक़सद है?

पूँजीपति वर्ग की आपसी प्रतिस्पर्धा के चलते मुनाफ़े की गिरती औसत दर का संकट गहरा हो रहा है। इसीलिए कोरोना काल में मौक़े का फ़ायदा उठाकर बेलसोनिका समेत तमाम कम्पनी प्रबन्धनों द्वारा स्थायी मज़दूरों और पुराने कैज़ुअल मज़दूरों को निकालने की प्रक्रिया में तेज़ी देखी जा सकती है, ताकि नये असुरक्षित मज़दूरों को और भा ज़्यादा लूटा जा सके।

आज देश के स्तर पर महज़ 2-3 प्रतिशत मज़दूर हैं जो मुश्किल से श्रम क़ानूनों के दायरे में आते हैं। अब पूँजीपति अपनी चहेती मोदी सरकार के ज़रिए बचे-खुचे श्रम क़ानूनों को भी क़ानूनी तौर पर ख़त्म करा रहे हैं। यूनियनों में एकजुट मज़दूरों की संख्या घटती जा रही है। जब भी मज़दूर उत्पीड़न, शोषण और अन्याय के ख़िलाफ़ अपनी जायज़ व क़ानूनी माँगों के लिए संघर्ष के मैदान में उतरते हैं तो श्रम विभाग से लेकर शासन-प्रशासन-न्यायालय भी प्रबन्धन की बोली बोलते हैं और उसी के अनुसार फ़ैसले देते हैं।

ऐसे में आगे के संघर्ष का रास्ता क्या हो?

गुड़गाँव में मारूति-सुज़ुकी के मदर प्लाण्ट और उसकी वेण्डर कम्पनियों के मज़दूरों का साझा मंच बनाने की बातें भी आ रही हैं जिसे राष्ट्रीय स्तर तक ले जाने की बात उठी है। ऑटोमोबाइल इण्डस्ट्री काण्ट्रैक्ट वर्कर्स यूनियन का यह भी मानना है कि इसका राष्ट्रीय ही नहीं बल्कि अन्तरराष्ट्रीय महत्व है। लेकिन दिक़्क़त वही पुरानी है। कुछेक यूनियनों को छोड़कर बाक़ी में ठेका मज़दूरों को साथ न लेने की समस्या है। न ही इस मंच की कोई साझा नीति और कार्यक्रम, अभी तय हुआ है।

पहले के आन्दोलनों जैसे रिको के कारख़ाने में आन्दोलन के वक़्त अमेरिका तक की सप्लाई प्रभावित हुई थी और हज़ारों की संख्या में कई कम्पनियों के मज़दूर सड़कों पर आ गये थे। होण्डा के मज़दूरों के संघर्षों के भी उदाहरण हैं। लेकिन होण्डा जैसे आन्दोलनों की पुनरावृत्ति उसी रूप में सम्भव नहीं है। एक वक़्त था जब संघर्ष के समर्थन में 30 यूनियनों ने हड़ताल की घोषणा कर दी थी। पूँजीपति वर्ग ने भी इन अनुभवों से सीखा है और इस प्रकार की स्थिति से निपटने के लिए वह स्थायी मज़दूरों की संख्या कम कर रहा है, बचे हुए स्थायी मज़दूरों को अधिक वेतन और भत्ते दे रहा है जबकि अस्थायी मज़दूरों की संख्या को बढ़ा रहा है और उनकी लूट और शोषण की दर को कम मज़दूरी, अधिक काम के घण्टों आदि के ज़रिए बढ़ा रहा है। प्रबन्धन ने स्थायी मज़दूरों को सभी तरह के अस्थायी मज़दूरों के मुद्दे न उठाने की शर्त पर बेहतर वेतन, बोनस-भत्ते देकर कमज़ोर कर दिया है। अगर गुड़गाँव, मानेसर,धारूहेड़ा, बावल, नीमराना की औद्योगिक पट्टी पर निगाह डालें तो पता चलता है कि यहाँ अधिकांश कारख़ानों में स्थायी मज़दूरों की यूनियनें ही हैं और अस्थायी मज़दूरों के मसले ये बिरले ही उठाती हैं और यदि उठाती भी हैं तो महज़ औपचारिकता के तौर पर।

मज़दूरों की सेक्टरगत और इलाक़ाई एकता के स्तर पर एकजुटता ही आन्दोलन को आगे ले जा सकती है। आन्दोलन को आगे बढ़ाने के लिए फ़ौरी तौर पर ये क़दम उठाने होंगे : पहला, चूँकि बेलसोनिका प्रबन्धन सहित पूरे औद्योगिक क्षेत्र के मालिक संयुक्त रूप से एक जैसी नीतियों को लागू कर रहे हैं, इसलिए हमें संयुक्त कार्रवाइयों पर जनवादी तरीक़े से अमल करना होगा और तुरन्त व्यापक सेक्टरगत और इलाक़ाई एकजुटता के आधार पर संघर्ष की तैयारी करनी होगी। दूसरा, तमाम ठेका मज़दूरों व तमाम अस्थायी मज़दूरों (जैसे नीम ट्रेनी, डी.टी.ए.टी. डब्ल्यू.) के स्थायी रोज़गार, समान वेतन सुविधाएँ-भत्ते, यूनियन अधिकार, श्रम अधिकार के लिए माँगपत्रकों में उनकी माँगें रखना। तीसरा, बहुसंख्यक ठेका वर्कर आबादी को और तमाम तरह के अस्थायी मज़दूरों को संघर्षों में शामिल करना होगा। वे तभी संघर्ष में शामिल होंगे जब कई संघर्षों में उनकी माँगों पर दृढ़ स्टैण्ड लिया जायेगा। यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि जब तक स्थायी और अस्थायी ठेका मज़दूरों की मुख्य माँगों पर कार्रवाई नहीं होगी तब तक आन्दोलन को वापस नहीं लिया जायेगा।

बिलकिस बानो बलात्कार और हत्या मामले के 11 अपराधियों की रिहाई : भाजपा और संघ की बेशर्मी की पराकाष्ठा

– लता

देश के इतिहास में लिखे कई काले अध्यायों में एक अध्याय होगा ख़ून से सना मार्च 2002 गुजरात नरसंहार का इतिहास। तीन दिनों तक गुजरात की सड़कों पर मौत का ताण्डव चलता रहा, सड़कों पर औरतें, बच्चें, बुज़ुर्ग, नौजवान क़त्ल किये जाते रहे। दंगाई हैवानियत की सारी हदें पार करते हुए इन्सानियत को शर्मसार करने वाले कुकृत्यों से गुजरात की सड़कों, गलियों और मोहल्लों को ख़ून में भिगोते रहे। चारों ओर चीख़-पुकार मची थी। दिल दहला देने वाली मदद की गुहार आती रही लेकिन पुलिस, अधिकारी या सेना इनकी मदद के लिए नहीं पहुँचे। मोदी के नेतृत्व वाली गुजरात सरकार न केवल इस हैवानियत पर आँख मूँदे थी बल्कि इस नरसंहार की योजना में उसके ख़ूनी हाथ सने थे। दंगों के बाद राज्य सरकार के सीधे-सीधे शामिल होने के हज़ारों तथ्य सामने आने लगे। इन तथ्यों के आधार पर स्पष्ट कहा जाने लगा कि 2002 के गुजरात दंगे राज्य द्वारा प्रायोजित नरसंहार थे। समझा जा सकता है कि जब रक्षक ही भक्षक बने बैठे हैं तो सड़कों पर रोते बिलखते और मदद की गुहार लगाते लोगों को सहायता कहाँ से पहुँचती।

2002 से लेकर अब तक कुछ मामलों को छोड़कर लगभग सभी मामलों में न्याय का दरवाज़ा खटखटाने वालों को निराशा ही हासिल हुई है। अभी 24 जून 2022 को ज़ाकिया जाफ़री की याचिका ख़ारिज करते हुए सुप्रीम कोर्ट ने प्रधान मंत्री नरेन्द्र मोदी और गृह मंत्री अमित शाह को सभी आरोपों से बरी कर दिया। इतिहास के इस काले अध्याय में देश को शर्मसार करने वाला एक और अध्याय जुड़ गया है। 15 अगस्त को बिलकिस बानो बलात्कार और हत्या मामले के 11 अपराधियों को क्षमा दे कर रिहा कर दिया गया। बिलकिस बानो भी गुजरात नरसंहार की शिकार महिला है। 11 फ़ासीवादी दंगाइयों ने 3 मार्च 2002 को इसके परिवार के 15 सदस्यों में से 14 को उसकी आँखों के सामने मार डाला। महिलाओं के साथ बलात्कार किया फिर उन्हें मार डाला। स्वयं बिलकिस बानो के साथ बेहद बर्बरता के साथ गैंग रेप किया गया। उस समय बिलकिस बानो 19 साल की थी और गर्भवती थी। चौदह लोगों की हत्या और बलात्कार ख़ौफ़नाक है लेकिन इन 11 अपराधियों ने दरिन्दगी की सारी सीमा पार करते हुए बिलकिस बानो की तीन साल की मासूम बेटी को उसकी गोद से छीनकर पत्थर पर पटक कर मार डाला। बिलकिस बानो बेहोश हो गयी और उसे मरा समझकर इन फ़ासीवादी दरिन्दों ने उसे छोड़ दिया। इस साल 15 अगस्त को ऐसे बर्बर अपराधियों को भाजपा की शासन वाली गुजरात सरकार ने न केवल रिहा किया है बल्कि कारावास के बाहर विश्व हिन्दू परिषद और आरएसएस के कार्यकर्ताओं ने इन 11 फ़ासीवादी हत्यारों और बलात्कारियों के चरण स्पर्श कर, मिठाई खिलायी और फूल-मालाओं से उनका स्वागत किया। स्वागत करने वालों में कई महिलाएँ भी शामिल थीं।

इतना शर्मसार हमारा देश शायद ही पहले कभी हुआ होगा जितना 15 अगस्त को 11 फ़ासीवादी अपराधियों के रिहा होने पर हुआ है। वैसे कश्मीर में आसिफ़ा गैंग रेप आरोपियों के समर्थन में भाजपा की निकली रैली या हाथरस गैंग रेप आरोपियों के समर्थन में भाजपा एमएलए द्वारा निकाली रैली देश का सिर शर्म से नीचा कर चुकी है लेकिन स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर इन अपराधियों को रिहा किया जाना सरकार की बेशर्मी की पराकाष्ठा है। लाल क़िले की प्राचीर से नारी शक्ति, लैंगिक समानता और नारी सम्मान की बात करने वाले प्रधानमंत्री के अपने राज्य में 15 अगस्त को ही इन अपराधियों को माफ़ी देकर रिहा किया गया। वैसे तो प्रधानमंत्री को लाल क़िले से शिक्षा, रोज़गार, स्वास्थ्य, आवास और भोजन की बात करनी चाहिए थी। लेकिन उन्होंने महिलाओं का मज़ाक़ नहीं उड़ाने के लिए बेहद भावुक होकर देशवासियों को उपदेश दिया! लेकिन क्या 11 अपराधियों को सारे नियम-क़ानूनों की तिलांजलि देकर 15 अगस्त को रिहा करना देश की औरतों के साथ किया गया भद्दा मज़ाक़ नहीं है? निश्चित ही यह भद्दा और क्रूर मज़ाक़ है। साथ ही यह आने वाले भयानक काले दिनों का संकेत भी है। बलात्कारियों, हत्यारों और लम्पटों को खुला सन्देश दिया जा रहा है कि वे कुछ भी करें उन्हें राज्य का पूरा संरक्षण और समर्थन हासिल होगा।

बिलकिस बानो मामले के 11 अभियुक्तों को रिहा करने के लिए सबसे उपयुक्त दिन इन्हें 15 अगस्त ही मिला। ऐसा करने के लिए आज़ादी के अमृत महोत्सव पर क़ैदियों को रिहा करने के मानव संसाधन मंत्रालय द्वारा जारी निर्देश को अवसर बनाया गया। हालाँकि, उस निर्देश में 12 ऐसी श्रेणियाँ गिनाई गयी थीं जिनमें माफ़ी नहीं दी जा सकती थी। स्पष्ट तौर पर बलात्कार और सामूहिक बलात्कार (गैंग रेप) के अपराधियों को माफ़ी नहीं दी जानी थी। लेकिन गुजरात सरकार ने अपनी 1992 की पुरानी नीति के आधार पर इन 11 अपराधियों को रिहा कर दिया। लेकिन 1992 की नीति अब प्रचलन में नहीं है। अमृत महोत्सव पर जारी निर्देश में यह भी स्पष्ट किया गया था कि माफ़ी दिये जाने में केन्द्र से सलाह मशविरा किया जाना ज़रूरी था। मौक़ा बनाया गया अमृत महोत्सव का लेकिन अमृत महोत्सव पर जारी निर्देश को न मान कर 1992 के क़ानून का पालन किया गया जो पुराना हो चुका है और जिसे लागू नहीं किया जाता है। मतलब "जब सईंया भये कोतवाल तो डर काहे का"! गुजरात के ऐडिशनल सेक्रेटरी का कहना था कि केन्द्र सरकार के जारी निर्देश बिलकिस बानो के मामले पर लागू ही नहीं होते हैं क्योंकि गुजरात राज्य ने अपनी 1992 की नीति के तहत माफ़ी दी है वह नीति जो पहले ही अमल से बाहर हो गयी थी। इसलिए आनन-फ़ानन में एक कमेटी का निर्माण कर सभी को माफ़ी दे दी गयी। इस कमेटी में लगभग सभी भाजपा के लोग हैं।

इन अपराधियों का रिहा होना केन्द्र और राज्य सरकार की मिलीभगत है। यह सम्भव ही नहीं है कि भाजपा शासित कोई राज्य सरकार आज केन्द्र सरकार के आदेशों के उलट जाकर कोई क़दम उठा सकती है। वास्तव में यह क़दम भाजपा की केन्द्र और राज्य सरकार ने सोचे-समझे तौर पर उठाया है। आने वाले गुजरात विधानसभा चुनावों में भाजपा की हालत कुछ पतली नज़र आ रही है। इसलिए हिन्दू वोटों के सुदृढ़ीकरण को ध्यान में रखकर यह क़दम उठाया गया है। इसके ज़रिए एक तीर से कई निशाने साधने की कोशिश की गयी है : आम तौर पर हिन्दू वोट, साथ में, पिछड़ा वोट, पटेल वोट, दलित वोट और यहाँ तक कि जनजातीय वोट।

अब ये अपराधी बस खुलेआम ही नहीं बल्कि सीना चौड़ा कर घूमेंगे क्योंकि इनके रिहा होने पर इनका ऐसा सम्मान हुआ है जैसा समाज के लिए किसी क़ुर्बानी देने वाले का होता है। यह घटना भाजपा की राजनीति और इसके कार्यकर्ताओं के चरित्र का भी बयान करती है। यह बलात्कारियों, हत्यारों और लम्पटों की पार्टी है, तभी यह उनको संरक्षण देती है। जिस कमेटी ने इन्हें रिहा किया है उनका कहना है कि चूँकि ये ब्राह्मण हैं, ब्राह्मणों के संस्कार अच्छे होते हैं इसलिए इन्हें रिहा किया जा रहा है। 14 लोगों की हत्या कर और उनमें से कई का बलात्कार कर तथा तीन साल की मासूम बच्ची का क़त्ल कर इन फ़ासीवादी ब्राह्मणवादी हत्यारों ने निश्चित ही अपने संस्कार का प्रदर्शन किया है। आरएसएस और भाजपा ब्राह्मणवादी व सवर्णवादी राजनीति करने वाली पार्टी है। देश में पहले से पैठे जातिवाद को और हवा देकर भयंकर जातिवादी राजनीति कर रही है।

इन अपराधियों को रिहा करने के लिए आनन-फ़ानन में एक कमेटी का निर्माण कर सभी को माफ़ी दे दी गयी। इस कमेटी में लगभग सभी भाजपा के लोग हैं। इसमें भाजपा के दो एमएलए शामिल हैं जिसमें एक महिला एमएलए सुमन चौहान है, एक अन्य महिला भाजपा कार्यकर्ता स्नेहाबेन भाटिया भी है। इसका उल्लेख ज़रूरी है क्योंकि अक्सर किसी महिला, दलित या किसी अन्य उत्पीड़ित पहचान के व्यक्ति के उच्च पद पर आसीन होने पर उसे नारी मुक्ति और महिला सशक्तिकरण या दलित मुक्ति से जोड़कर देखने की लोगों की आदत होती है। हम मज़दूर भी अपने राज्य, क्षेत्र या जाति के लोगों के उच्च पद पर होने से ख़ुश हो जाते हैं। लेकिन पहचान चाहे कुछ भी हो वह व्यक्ति और महिला जिस फ़ासीवादी या प्रतिक्रियावादी विचारधारा और राजनीति से जुड़े होते हैं वह उसी राजनीति को स्थापित करते हैं। उनकी व्यक्तिगत पहचान से उनकी राजनीति में कोई परिवर्तन नहीं आता। नहीं तो आज या पहले भी स्मृति ईरानी, निर्मला सीतारमन, मीनाक्षी लेखी व भाजपा की अन्य महिला मंत्री बलात्कार और महिला उत्पीड़न के ख़िलाफ़ सड़कों पर होतीं। ख़ैर, अभी देश में आदिवासी पहचान की महिला राष्ट्रपति बनने पर पढ़े-लिखे लिबरल तबक़े में ख़ुशी की लहर है मानो अब सारे आदिवासियों का कल्याण होगा। हमें नहीं भूलना चाहिए कि इसके पहले देश के राष्ट्रपति दलित पृष्ठभूमि से थे। पाँच साल तक देश के सर्वोच्च पद पर आसीन होने के बाद भी देश में दलितों की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आया। भाजपा की ब्राह्मणवादी और सवर्णवादी राजनीति से दलितों की स्थिति और बदतर हुई है। जालौर के 8 साल के बच्चे इन्द्र मेघवाल को बस पानी का घड़ा छूने के लिए अपनी जान गवानी पड़ी। वह मासूम बच्चा बर्बर पिटाई के बाद 23 दिनों तक दर्द में तड़पता रहा और आख़िर में उसने दम तोड़ दिया। वह शिक्षक इतनी हैवानियत करने के बाद भी बच निकलने के बारे में आश्वस्त था क्योंकि उसे पता है अभी चारों ओर संघ की राजनीति का बोलबाला है। संघ ऐसे सभी जातिगत उत्पीड़कों को संरक्षण दे रहा है। वहीं देश के सर्वोच्च पद पर एक आदिवासी महिला के होने पर भी हम बिलकिस बानो के साथ हो रहे अन्याय पर उनके एक शब्द नहीं सुनेंगे। इसी दौर में, भाजपा की एक नेता सीमा पात्रा का मामला भी सामने आया जिसमें पता चला कि उसने अपने यहाँ काम करने वाली आदिवासी घरेलू कामगार की बेरहमी से पिटाई की, उसके दाँत लोहे की रॉड से तोड़ डाले, उसकी हड्डी तोड़ दी और उसे बन्दी बनाकर रखा।

इन 11 अपराधियों को सज़ा तक पहुँचाने का पूरा दौर बिलकिस के लिए यंत्रणादायी और जोखिम-भरा था। बार-बार अदालत में उस हौलनाक मंज़र को बयान करना आसान नहीं होगा। शुरू से ही यह जंग कठिनाइयों से भरी थी। राज्य के संरक्षण में हो रहे दंगों में पुलिस और अधिकारियों से किसी मदद की तो कोई उम्मीद नहीं थी लेकिन थाना पुलिस और पुलिस के अधिकारियों ने दंगा पीड़ितों को डराया-धमकाया। जब बिलकिस बानो अपने साथ हुए अन्याय की रिपोर्ट लिखाने पुलिस के पास पहुँची, तो थाने में उसे डराया-धमकाया गया ताकि वह एफ़आईआर न करे। सबूत मिटाये गये और मृतकों को बिना किसी पोस्टमार्टम के दफ़ना दिया गया। जिस डॉक्टर ने बिलकिस की जाँच की उसने बलात्कार होने से साफ़ इन्कार कर दिया। बिलकिस को लगातार हत्या की धमकियाँ दी गयीं। पुलिस और अधिकारी आरोपियों को संरक्षण देते रहे। बिलकिस बानो का केस गुजरात नरसंहार के दौरान सबसे बर्बर घटनाओं में से एक था इसलिए इसे लेकर लोग समर्थन में उतरे। गुजरात दंगों से सम्बन्धित किसी भी मामले में बार-बार सरकार के शामिल होने की बात सामने आती रही। हर मामले में यह स्पष्ट होता गया कि दंगाइयों को गुजरात पुलिस और अधिकारी संरक्षण दे रहे थे। व्यापक जनदबाव में केस को गुजरात से महाराष्ट्र भेज दिया गया। एक लम्बे संघर्ष के बाद 2008 में इन आरोपियों को उम्र क़ैद की सज़ा सुनायी गयी। इस दौर से गुज़रने के बाद जो न्याय बिलकिस को मिला आज वह छिन गया है। केन्द्र सरकार और न ही गुजरात सरकार या सुप्रीम कोर्ट ने इतना ज़रूरी समझा कि इस निर्णय के बारे में बिलकिस बानो को सूचित कर दे। एक बार फिर वह ख़ौफ़ के साये में जी रही है। इतनी मानसिक यंत्रणा से गुज़रने के बाद पल भर में सारी जद्दोजहद ख़ाक हो गयी और बिलकिस बानो वही पहुँच गयी जहाँ वह 2002 मार्च में खड़ी थी। टूटी, हताश और नाउम्मीद।

गुजरात दंगों से जुड़े मामलों का इतिहास और हश्र देश में न्यायपालिका और राज्य के अन्य स्तम्भों में फ़ासीवाद के मज़बूत होते शिकंजे का उदाहरण है। गुजरात दंगों के बाद देश में मोदी सरकार और केन्द्र में वाजपेयी सरकार की कड़ी निन्दा होने लगी। दंगों की निष्पक्ष जाँच की माँग उठने लगी। अभी देश में फ़ासीवाद अपने पैर फैला ही रहा था। राज्य मशीनरी में बुर्जुआ जनवाद के अंश बचे हुए थे। हालाँकि बुर्जुआ जनवाद कितना भी जनवादी हो वह आम मज़दूर और मेहनतकश

(पेज 6 पर जारी)

बिलकिस बानो बलात्कार और हत्या मामले के 11 अपराधियों की रिहाई : भाजपा और संघ की बेशर्मी की पराकाष्ठा

(पेज 5 से आगे)

के लिए तानाशाही ही होता है। लेकिन फिर भी, भारी जनदबाव और बुर्जुआ राज्य के स्तम्भों में बचे-खुचे जनवादी पक्ष ने कुछ कमेटियों का गठन किया। इन कमेटियों की रिपोर्टें भी बुर्जुआ राज्य के चरित्र में हो रहे फ़ासीवादी बदलाव को दर्शाती हैं। कई रिपोर्टों में मोदी के नेतृत्व वाली गुजरात सरकार को दंगों के लिए दोषी ठहराया तो कई रिपोर्टों में मोदी को पूरी तरह दोषमुक्त कर दिया गया। उदाहरण के लिए राजू रामचन्द्रन ने अपनी रिपोर्ट में मोदी सरकार को दंगों के लिए सीधे तौर पर दोषी ठहराया था। राजू रामचन्द्रन 'अमेकस क्यूरे' यानी जाँच में अदालत की सहायता करने वाली कमेटी थी। राजू रामचन्द्रन के अनुसार मोदी द्वारा 1 मार्च को टीवी पर दिया गया भाषण साम्प्रदायिकता फैलाने वाला था जिसमें मोदी ने न्यूटन को उद्धृत करते हुए कहा था कि "हर क्रिया की प्रतिक्रिया होती है"। इसके अलावा मोदी के बंगले पर 27 फ़रवरी की अपात बैठक जिसमें मोदी ने गुजरात पुलिस और आला अधिकारियों से कहा था कि वह हिन्दुओं को अपना ग़ुस्सा निकालने दें। इसे रोकने का प्रयास नहीं करें। इस बैठक में संजीव भट्ट की उपस्थिति के दावे को भी रामचन्द्रन की रिपोर्ट पुष्ट करती थी। चूँकि संजीव भट्ट मोदी के ख़िलाफ़ गवाही दे रहे थे तो मोदी का यह दावा है कि यह बैठक हुई ही नहीं और अगर कोई बैठक हुई भी तो उसमें भट्ट उपस्थित नहीं थे। तीस साल पहले हिरासत में हुई मौत के लिए आज संजीव भट्ट सलाख़ों के पीछे हैं। इस मामले में 11 और लोग शामिल हैं लेकिन गिरफ़्तारी बस भट्ट की हुई है।

राजू रामचन्द्रन की रिपोर्ट के उलट दंगों की जाँच के लिए बना नानावती-मेहता आयोग मोदी को हर आरोप से बरी करता है। 2008 में रिपोर्ट के पहले हिस्से को जारी करते नानावटी-मेहता आयोग ने गोधरा काण्ड को मुसलमानों का षड्यंत्र बताया और मोदी सरकार को इससे पूरी तरह दोषमुक्त कर दिया। साथ ही आयोग ने यह भी रिपोर्ट दी कि किसी भी रूप में दंगे मोदी सरकार द्वारा प्रायोजित नहीं थे। इतना ही नहीं इस आयोग ने उन आईएएस अधिकारियों का नाम लेते हुए उन पर भी सवाल उठाये जिन्होंने दंगों में मोदी सरकार के शामिल होने की बात कही थी। ये अधिकारी हैं संजीव भट्ट, राहुल शर्मा और आर.बी. श्रीकुमार। लेकिन लालू यादव मंत्रायल द्वारा बनायी गयी यू.सी. बनर्जी की रिपोर्ट के अनुसार गोधरा ट्रेन काण्ड एक दुर्घटना थी जिसमें किसी तरह के षड्यंत्र की बात नहीं आती है।

हमें बिलकिस बानो केस या ज़ाकिया जाफ़री के मामले के पीछे छुपे हम देख सकते हैं कि विशेष तौर पर गुजरात दंगों के बाद राज्य के स्तम्भों में फ़ासीवाद के पैर किस तेज़ी से फैल रहे थे। आज मोदी-शाह को तीन तिकड़म कर, आयोगों के अधिकारियों की सिफ़ारिश करने या सबूतों व गवाहों को रास्ते से साफ़ करने की ज़रूरत नहीं है। अब यह काम एसआईटी, न्यायपालिका, पुलिस, सीबीआई, मीडिया व अन्य संस्थान स्वयं कर रहे हैं। जज लोया की संदिग्ध स्थिति में मौत बताती है कि किस तरह फ़ासीवाद मज़बूत हो रहा है। कोई जज यदि आज फ़ासीवाद के ख़िलाफ़ बोलता नज़र आता है तो लोग कहते हैं कि उसका भी 'लोया हो जायेगा'। मतलब यह एक खुला रहस्य है कि लोया की मौत मोदी के ख़िलाफ़ बोलने की वजह से हुई थी। तीस्ता सीतलवाड़ की गिरफ़्तारी भी दिखाती है कि अब न्यायपालिका खुले तौर पर फ़ासीवाद के लिए काम कर रही है। सभी जगहों पर संघ ने अपने लोगों को नियुक्त किया है या उन्हें अपने नियंत्रण में ले लिया है। इसलिए बिलकिस बानो केस के अपराधियों को सभी नियम-क़ानूनों की धज्जियाँ उड़ाकर रिहा करने पर भी सुप्रीम कोर्ट ने बस गुजरात सरकार को हल्की-सी झिड़की दी है।

फ़ासीवादियों के मंसूबों को समझना होगा। मोदी और अमित शाह के दामन पर लगे गुजरात दंगों के धब्बे बहुत बड़े और गहरे हैं। इन्हें मिटाने और अपनी छवि सुधारने के लिए मोदी-अमित शाह की जोड़ी पूरे गुजरात नरसंहार को ही इतिहास के पन्नों से मिटाना चाहती है। इसलिए इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि आज स्कूल की पाठ्यपुस्तकों से गुजरात दंगों से जुड़े सारे अध्याय और सन्दर्भ हटा दिये गये हैं। सुप्रीम कोर्ट ने ज़ाकिया जाफ़री की याचिका ख़ारिज कर पहले ही मोदी और अमित शाह को दंगों में शामिल होने से बरी कर दिया है। अब इन 11 अपराधियों को रिहा कराकर गुजरात दंगों का उल्लेख ही समाप्त कर दिया जाना है। आने वाली पीढ़ी को इसके बारे में कुछ ख़बर ही नहीं होगी कि गुजरात में विशेष तौर पर तीन दिनों तक साम्प्रदायिक उन्माद की आग लगाकर मोदी-शाह की जोड़ी ने अपने राजनीतिक भविष्य का निर्माण किया था। गुजरात दंगे पूँजीपतियों के सामने सर्टिफ़िकेट था कि उनके हितों की रक्षा के लिए यह जोड़ी किसी भी सीमा को पार कर सकती है। पूरी राज्य मशीनरी को अपने इशारों पर नचाकर पूँजीपतियों का हित साध सकती है। पूँजीपतियों को भी फ़ासीवाद का यह नया तानाशाह व्यक्तित्व भाया और तथाकथित गुजरात मॉडल संकट से उबरने का एक रास्ता समझ आया। पानी की तरह पैसा बहाकर पूँजीपतियों ने 2014 में मोदी को चुनावों में जीत दिलायी और आज अपनी पाई-पाई की क़ीमत सूद समेत वसूल रहे हैं। औने-पौने दामों में पूँजीपति सार्वजनिक उपक्रम ख़रीद रहे हैं, इन्हें टैक्स से छुट्टी दी जा रही है और इनके लोन माफ़ किये जा रहे हैं। बिरले ही लागू होने वाले श्रम क़ानूनों को कचरा पेटी के हवाले करने की तैयारी नये मज़दूर-विरोधी लेबर कोड के तहत कर ली गयी है। सरकारी ज़मीन, मिल, खान, बिजली सब पूँजीपतियों को कौड़ी के भाव मिल रहे हैं।

लेकिन देश-विदेश में अभी भी मोदी-शाह को गुजरात नरसंहार के लिए शर्मिन्दा होना पड़ता है। विदेशों में मोदी के स्वागत आयोजनों में बाहर भारी भीड़ गुजरात नरसंहार की तख़्ती लेकर, ख़ूनी मोदी के नारे लगाती है। इसलिए इन दोनों की जोड़ी हर क़ीमत पर गुजरात नरसंहार को इतिहास के पन्नों से मिटाना चाहते हैं। यह लोगों के बीच से गुजरात दंगों की स्मृति को मिटाना चाहती है। लेकिन हमें इन फ़ासीवादियों को उनके मंसूबों में कामयाब नहीं होने देना है।

जानलेवा शोषण के ख़िलाफ़ लड़ते बंगलादेश के चाय बाग़ान मज़दूर

– केशव

"हमारे एक दिन की तनख़्वाह में एक लीटर खाने का तेल भी नहीं आ सकता, तो हम पौष्टिक खाना, दवाइयाँ और बच्चों की पढ़ाई के बारे में सोच भी कैसे सकते हैं?" बंगलादेश के चाय के बाग़ान में काम करने वाले एक मज़दूर का यह कहना है जिसे एक दिन काम करने के महज़ 120 टका मिलते हैं। अगस्त महीने की शुरुआत से बंगलादेश के चाय बाग़ानों में काम करने वाले क़रीब डेढ़ लाख मज़दूर अपनी जायज़ माँगों को लेकर सड़कों पर हैं। इन मज़दूरों की माँग यह है कि उन्हें गुज़ारे के लिए कम से कम 300 टका दिन का भुगतान किया जाये, तभी वे चाय के बाग़ानों में काम करेंगे। अब तक इन मज़दूरों को महज़ 120 टका देकर पूरे दिन बेगारी कराया जाता रहा है। उन्हें जितनी तनख़्वाह मिलती है, उतने में वे खाने की बुनियादी चीज़ें भी नहीं ख़रीद पाते हैं। इन हालातों में उनके लिए अपने बच्चों को स्कूल में भेज पाना या फिर उन्हें बेहतर स्वास्थ्य सुविधाएँ मुहैया कराने के बारे में सोच भी पाना किसी अधूरे सपने की तरह है।

बंगलादेश में क़रीब डेढ़ लाख मज़दूर 200 से अधिक चाय के बाग़ानों में काम करते हैं। इन मज़दूरों द्वारा पैदा की गयी चाय अमेरिका, ब्रिटेन से लेकर फ़्रांस जैसे देशों में निर्यात की जाती है। लेकिन इन चाय बाग़ानों में काम करने वाले मज़दूर, जिनमें अधिकतर महिलाएँ होती हैं, बहुत ही नारकीय स्थिति में काम करते हैं जिसके लिए उन्हें महज़ 120 टका दिये जाते हैं, जो कि बंगलादेश में न्यूनतम मज़दूरी से भी कम है। बंगलादेश के इन मज़दूरों की आय केवल बंगलादेश ही नहीं बल्कि पूरी दुनिया के मज़दूरों की आय में सबसे कम है। चाय के उद्योग में लगे पूँजीपति इनका अतिशोषण कर अकूत मुनाफ़ा कमा रहे हैं। बंगलादेश की सरकार और इन बाग़ानों के मालिकों ने मज़दूरों द्वारा इस नारकीय हालत और कम वेतन के ख़िलाफ़ प्रतिरोध किये जाने के बाद बेहद ही मामूली और नाकाफ़ी बढ़ोत्तरी की बात की है, जिसे मज़दूरों की यूनियन ने सिरे से ख़ारिज कर दिया। बाग़ान मालिकों ने इस विरोध के बाद दिन का 14 टका प्रतिदिन बढ़ाने की बात की, वहीं सरकार द्वारा उनकी तनख़्वाह में 25 फ़ीसदी बढ़ोत्तरी की बात कही गयी है। ज़ाहिर है यह बढ़ोत्तरी बेहद ही मामूली है, और न्यूनतम मज़दूरी से भी बहुत कम है। एक पूँजीवादी समाज में न्यूनतम मज़दूरी वह न्यूनतम आय होती है, जो यह सुनिश्चित करती है कि मज़दूर ज़िन्दा भर रह सके और अगले दिन काम पर जा सके, लेकिन बंगलादेश के इन चाय बाग़ान के मज़दूरों को तो यह न्यूनतम मज़दूरी भी मयस्सर नहीं है। और सरकार इसे लागू करवाने के बजाय खुलेआम पूँजीपतियों का पक्ष ले रही है।

पिछले 15 सालों में महँगाई के अनुपात में इन मज़दूरों की तनख़्वाह के बढ़ने की रफ़्तार बहुत ही कम रही है। इसका मतलब महँगाई के अनुपात में मज़दूरों की तनख़्वाह में सापेक्षतः गिरावट ही आयी है। पिछले 17 वर्षों में इन मज़दूरों के प्रतिदिन की आय में केवल 88 टका की बढ़ोत्तरी हुई है। वर्ष 2005 में एक लम्बे संघर्ष के बाद इनकी प्रतिदिन की मज़दूरी 32 टका से 48 टका हुई। उसके बाद वर्ष 2012 में 65 टका, 2015 में 79 टका और 2017 में इनकी तनख़्वाह 85 टका प्रतिदिन तक पहुँची। फ़िलहाल ये मज़दूर 120 टका प्रतिदिन पर पूरा दिन इन चाय बाग़ानों में खटने को मजबूर हैं। वहीं दूसरी ओर महँगाई का आलम यह है कि इनके एक दिन की तनख़्वाह से एक लीटर खाने का तेल भी नहीं आ सकता। ऐसे में इन मज़दूरों के पास संघर्ष के अलावा और कोई रास्ता नहीं बचता है। ये मज़दूर पिछले 13 अगस्त से बहादुरी के साथ अपनी माँगों को लेकर सड़कों पर हैं। लेकिन सरकार से लेकर मीडिया ख़ामोश है।

आज बंगलादेश समेत दुनियाभर के मज़दूर अपने हक़ों और अधिकारों के लिए सड़कों पर हैं। पाकिस्तान के 40,000 पावर लूम मज़दूर पिछले 1 अगस्त से सामाजिक सुरक्षा और तनख़्वाह में बढ़ोत्तरी के लिए सड़कों पर हैं। ग़ौरतलब है कि इस वर्ष 26 मार्च को पाकिस्तान सरकार ने 1 जुलाई से पावर लूम मज़दूरों के लिए उनकी तनख़्वाह में 17 प्रतिशत इज़ाफ़ा करने की घोषणा की थी, लेकिन अब तक किसी भी कारख़ाने में इसे लागू नहीं किया गया है। और सरकार ने भी इसपर कोई पहल नहीं ली, जिसके कारण 40,000 मज़दूरों ने काम बन्द कर हड़ताल की घोषणा कर दी है।

आज दुनिया के सभी देशों की सरकारें वहाँ के पूँजीपति वर्ग के हित में काम कर रही हैं, क्योंकि हम जिस समाज में जी रहे हैं, वह एक पूँजीवादी समाज है और उत्पादन से लेकर तमाम संसाधनों पर पूँजीपति वर्ग का क़ब्ज़ा है। ये सरकारें यह सुनिश्चित करती हैं कि पूँजीपति वर्ग मज़दूर वर्ग का शोषण कर अपने मुनाफ़े को बढ़ाता रहे, और मज़दूर वर्ग इसपर चूँ तक न करे। ये सरकारें मज़दूरों को भरमाने के लिए जनता में मौजूद जाति, धर्म, नस्ल, लिंग के भेदभाव को खाद-पानी देती रहती हैं, क्योंकि एक ओर तो इस भेदभाव का इस्तेमाल कर पूँजीपति वर्ग अपना मुनाफ़ा बढ़ाता है, वहीं दूसरी ओर इस भेदभाव के ज़रिए जनता को आपस में बाँटकर असल मुद्दों से उनका ध्यान हटा दिया जाता है। हमें यह भी बताया जाता है कि हमारा दुश्मन सरहद के पार है, ताकि हम अपने असल दुश्मन को नहीं पहचान सकें जो देश के भीतर बैठकर हमें लूट रहा है, और साथ ही दूसरे देशों के मज़दूरों की भी सस्ती श्रम शक्ति का इस्तेमाल कर उनकी मेहनत को लूट रहा है। हमारा दुश्मन सरहद के पार काम करने वाला मज़दूर नहीं है, बल्कि पूँजीपति वर्ग है, चाहे वह किसी भी देश का हो। आज हमें दुनिया को इसी रूप में ही देखने की ज़रूरत है। साथ ही दुनिया में कहीं भी मज़दूर वर्ग अपने अधिकारों के लिए लड़ता है, तो हमें उनके संघर्ष का समर्थन करना चाहिए।

शहीदेआज़म भगतसिंह के 114वें जन्मदिवस पर

मज़दूरों और मेहनतकशों की मुक्ति को समर्पित महान क्रान्तिकारी और चिन्तक थे हमारे भगतसिंह

हमें तुम्हारा नाम लेना है
इसलिए कि तुम्हारे नामलेवा नहीं।
संसद के खम्भे भी तुम्हारा
नाम लेते हैं
बिना किसी उच्चारण दोष के
और वातानुकूलित सभागारों में
तुम्हारी तस्वीरें हैं और
फूल-मालाएँ हैं
और धूपबत्तियों का ख़ुशबूदार
धुआँ है।

एक ख्यातिलब्ध राजनयिक
कहता है
कि तुम प्रयोग कर रहे थे
क्रान्ति के साथ
और बाज़ार सुनता है
और रक्त-सने हत्यारे हाथों से
विमोचित हो रही है
तुम्हारी शौर्य-गाथा पर आधारित
नयी बिकाऊ किताब
और एक बूढ़ा विलासी
पियक्कड़-पत्रकार
अपने अख़बारी कालम में तुम्हें
याद करता हुआ
अपने पूर्वजों के पाप धो रहा है।

हमें तुम्हारा नाम लेना है
कि वे लोग ख़ूब ले रहे हैं
तुम्हारा नाम
जिन्हें ख़तरा है
लोगों तक पहुँचने से तुम्हारा नाम
सही अर्थों में।

(शशिप्रकाश की कविता **'नयी सदी में भगतसिंह की स्मृति'** से)

23 साल की उम्र में देश की आज़ादी के लिए फाँसी के फन्दे पर झूल जाने वाले एक बहादुर नौजवान भगतसिंह की तनी हुई मूँछें और टोपी वाली तस्वीर तो आपने देखी होगी। असेम्बली में बम फेंकने और वहाँ से भागने के बजाय अपनी गिरफ़्तारी देकर बहरी अंग्रेज़ी सरकार को चुनौती देने वाली कहानियों से कई लोग परिचित होंगे। भारतीय शासक वर्ग की पूरी जमात हमारे महान पूर्वज शहीदेआज़म भगतसिंह के जन्मदिवस और शहादत दिवस पर उनके जीवन के केवल इन्हीं पक्षों पर ज़ोर देते रहते हैं क्योंकि उन्हें यह डर लगातार सताता रहता है कि कहीं जनता इनके विचारों को जानकर अन्याय के विरुद्ध विद्रोह न कर दे। शहीदों के सपनों के हत्यारे बुर्जुआ चुनावबाज़ दलों व संशोधनवादी पार्टियों और सुधारवादी ट्रेड यूनियन के नेता हर बार भगतसिंह की तस्वीरों और प्रतिमाओं पर फूलमाला चढ़ाकर उनकी क़ुर्बानियों के क़िस्से सुनाकर ख़ुद को शहीदों के सच्चे वारिस बताते हैं। शासक वर्ग के ये सेवादार हमें अपने महान पूर्वज भगतसिंह के जीवन के दूसरे पहलुओं से क्यों अनजान रखने की कोशिशें करते रहते हैं? भगतसिंह और उनके साथी असल मायने में कौन थे? क्या वे केवल बहादुर और देशभक्त नौजवान थे? राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, खालिस्तानियों जैसी प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ भगतसिंह को "राष्ट्रवादी" या सिख विद्रोही के तौर पर पेश करने की कोशिश करती हैं, तो दूसरी ओर अम्बेडकर के व्यवहारवादी सुधारवादी विचारों के साथ भगतसिंह के विचारों को मिलाने वाली ग़द्दार संशोधनवादी पार्टियाँ तथा अन्य अस्मितावादी ताक़तें भगत सिंह और उनके साथियों का नाम लेकर उनके विचारों को दूषित करने का प्रयास करती हैं, ताकि शहीदेआज़म भगतसिंह के विचारों पर धूल और राख की परतें चढ़ायी जा सकें।

आख़िर क्या थे उनके विचार? आज भी शासक वर्ग इनके विचारों को जनता के बीच क्यों नहीं पहुँचने देना चाहते? भगतसिंह और उनके साथी न केवल बहादुर और देशभक्त थे बल्कि वे अपने समय तक के क्रान्तिकारियों की पीढ़ी में सबसे विचारवान एवं उन्नत चेतना से लैस क्रान्तिकारी थे। अपने जीवन के आरम्भिक दिनों में भगतसिंह कांग्रेस और गाँधी की राजनीति से प्रभावित थे लेकिन जल्दी ही उन्हें यह बात समझ में आ गयी कि कांग्रेस ज़मीन्दारों-रायबहादुरों-धन्नासेठों और पूँजीपति वर्ग की पार्टी है और अपने वर्ग हितों के हिसाब से जनता के आन्दोलन का इस्तेमाल कर रही है।

जिस समय भगतसिंह क्रान्तिकारी आन्दोलन से जुड़े उस समय क्रान्तिकारी आन्दोलन में क्रान्तिकारी आतंकवाद की धारा प्रचलित थी। क्रान्तिकारी आतंकवाद की धारा से निर्णायक विच्छेद करने में भगतसिंह की भूमिका बेहद अहम थी। 1925 से 1929 के दौरान भगतसिंह, भगवतीचरण वोहरा और सुखदेव आदि ने रूस में मज़दूर वर्ग के नेतृत्व में सम्पन्न बोल्शेविक क्रान्ति और उसके नेताओं के विचारों का गहन अध्ययन किया। उन्होंने अपने अन्य साथियों को भी अध्ययन के लिए प्रेरित किया। 1928 के अन्त तक भगतसिंह तथा उनके साथी समाजवाद को अपना लक्ष्य बताने लगे और अपने संगठन का भी नाम 'हिन्दुस्तान प्रजातंत्र संघ' से बदलकर 'हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातंत्र संघ' कर दिया। भगतसिंह अपनी फाँसी के समय तक मार्क्सवाद का अध्ययन करते रहे और मार्क्सवादी नज़रिए से अतीत, वर्तमान और भविष्य के मुद्दों पर अपने विचार प्रकट करते रहे। अदालत में अपने प्रसिद्ध बयान में भगतसिंह ने कहा था आज़ादी से हमारा अभिप्राय है एक ऐसे समाज का निर्माण जिसमें एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्र तथा एक व्यक्ति द्वारा किसी दूसरे व्यक्ति का शोषण बिल्कुल असम्भव हो जाये। अगर कांग्रेस के नेतृत्व में आज़ादी हासिल हुई तो वह सिर्फ़ ऊपर के 10 प्रतिशत लोगों की आज़ादी होगी, पूँजीपतियों-साहूकारों की आज़ादी होगी; देश के 90 प्रतिशत मज़दूरों-किसानों की ज़िन्दगी को शोषण और लूट से आज़ादी नहीं मिलेगी। उनकी यह चेतावनी एकदम सही साबित हुई।

लम्बे संघर्ष और अकूत क़ुर्बानियों की बदौलत 15 अगस्त 1947 को जो राजनीतिक आज़ादी मिली वह आधी-अधूरी और विकलांग क़िस्म की आज़ादी थी क्योंकि पूँजीपति वर्ग को तो राजनीतिक सत्ता मिल गयी, लेकिन आम मेहनतकश जनता के सपने पूरे नहीं हुए। आज देश का शासन भारतीय पूँजीपति वर्ग के हाथ में है और वही लोगों की मेहनत और संसाधनों का सबसे बड़ा लुटेरा भी है। साथ ही, इस लूट को जारी रखने और बढ़ाने के लिए वह पूँजी और तकनोलॉजी साम्राज्यवादी देशों से भी लेता है और बदले में इस लूट का एक हिस्सा उन्हें भी देता है।

आज़ादी मिलने के बाद दो प्रकार के भारत का निर्माण हुआ। एक मेहनत की लूट करने वाले मुट्ठीभर लोगों का भारत, जिसमें रहने वाले लुटेरों की सम्पत्तियों और अय्याशी के साधनों में दिन दूनी और रात चौगुनी वृद्धि हुई। दूसरा भारत वह है जिसमें अपनी श्रमशक्ति को बेचकर ज़िन्दा रहने वाली विशाल आबादी रहती है। जीवनभर हाड़-तोड़ मेहनत करने वालों के हिस्से में ग़रीबी, भुखमरी, बेघरी, और तंगहाली ही आयी है। चाहे कांग्रेस, भाजपा या क्षेत्रीय पार्टियाँ या फिर नक़ली लाल झण्डे वाली भाकपा, माकपा या लिबरेशन जैसी पार्टियाँ सत्ता में रहें, दूसरे दर्जे के हिन्दुस्तान में बसने वाली मेहनतकश अवाम की हालत दिनों-दिन बद से बदतर ही होती जा रही है। कोरोना महामारी के दौरान ग़रीबों-मेहनतकशों की रोज़ी-रोटी का इन्तज़ाम किये बिना लगाये गये अनियोजित लॉकडाउन और सरकारी कुप्रबन्धन की क़ीमत भी करोड़ों-करोड़ आम लोगों ने ही चुकायी। बड़े पूँजीपति तो इस दौरान भी "आपदा में अवसर" का लाभ उठाते हुए अपनी तिजोरियाँ भरते रहे।

15 अगस्त 2022 के समय देश के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी आज़ादी के 75वें साल 'हर घर तिरंगा' को लटकाकर जश्न मनाने की बात रहे थे। ठीक इसी समय 13 अगस्त को राजस्थान के जालौर में 10 साल के दलित बच्चे को मटके से पानी पी लेने पर उसे एक जातिवादी शिक्षक ने पीट पीट कर मार डाला। अभी हाल ही में सुप्रीम कोर्ट ने 16 साल पुराने एक मामले में मानवाधिकार कार्यकर्ता हिमांशु के ऊपर पाँच लाख रुपये का ज़ुर्माना लगाया क्योंकि उन्होंने छतीसगढ़ के सुकमा ज़िला स्थित गोमपाड़ गाँव में पुलिस और सुरक्षाबलों द्वारा फ़र्ज़ी मुठभेड़ में 16 निर्दोष आदिवासियों के नरसंहार के लिए इन्साफ़ की माँग की। आज से क़रीब बीस साल पहले गुजरात में बिलकिस बानो नामक एक अल्पसंख्यक महिला के साथ सामुहिक बलात्कार और उनकी तीन वर्षीय बेटी समेत परिवार के सात लोगों की हत्या को अंजाम देने वाले 11 अपराधियों को सज़ा पूर्ण होने के पहले ही इसी स्वतंत्रता दिवस के दिन जेल से रिहा कर दिया गया। रिहाई के बाद इन अपराधियों का फूल-माला से ऐसे स्वागत किया गया जैसे कि उन्हें अपने फ़ासीवादी आपराधिक कुकर्मों का ईनाम दिया जा रहा हो। इन चन्द घटनाओं से आज़ादी के जश्न की असलियत का पर्दाफ़ाश हो जाता है। क्या ऐसी ही आज़ादी के लिए हमारे क्रान्तिकारियों ने अपनी शहादतें दी थीं?

भगतसिंह और उनके साथी इस ग़ैर-बराबरी, अन्याय, लूट और शोषण के ख़िलाफ़ थे। वे जनता की एकजुटता के दम पर ऐसे समतामूलक समाज की स्थापना चाहते थे जिसमें उत्पादन से लेकर राजकाज के पूरे ढाँचे पर आम मेहनतकश लोगों का अधिकार हो। इन शहीदों के विचारों से आज भी लोग अगर परिचित हो जायेंगे और एकजुट होकर संघर्ष करेंगे तो लुटेरों और उनकी नुमाइन्दगी करने वाली तमाम पार्टियों की लूट और शोषण के सभी हथियार ध्वस्त हो जायेंगे। लोग क्रान्तिकारियों के सही विचारों को नहीं जानें, आपस में बँटकर रहें, लूट-शोषण का खेल चलता रहे, ऐसी कोशिश तो सभी बुर्जुआ पार्टियाँ करती हैं लेकिन इस काम में फ़ासिस्ट संगठन आर.एस.एस. और उसके चुनावी चेहरे भाजपा और अनेक अनुषांगिक संगठनों का कोई जोड़ नहीं है। देश में साम्प्रदायिक सौहार्द बिगाड़ने के उद्देश्य से संघी फ़ासिस्ट मन्दिर-मस्जिद, लव जिहाद, गौरक्षा, हिजाब जैसे नक़ली मुद्दों को हवा देते रहते हैं।

आज त्योहारों में भी साम्प्रदायिक उन्माद का रंग घोला जा रहा है, राजनीतिक गोटी लाल करने के मंसूबे से साम्प्रदायिक दंगे तक करवाये जाते हैं। आज पूरे देशभर में साम्प्रदायिक तनाव का माहौल तैयार करने में हिन्दुत्ववादी फ़ासिस्ट शक्तियों के साथ इस्लामिक कट्टरपन्थी ताक़तों की भूमिका पूरक के रूप में ही है। इन प्रतिक्रियावादियों की मदद करने में भारतीय बुर्जुआ मीडिया सहयोगी के रूप में कार्यरत है।

जाति और धर्म के नाम पर फैलाये जा रहे वैमनस्य के बारे में भगतसिंह ने 'साम्प्रदायिक दंगे और उनका इलाज' नामक अपने लेख में सीधे शब्दों में कहा था – "लोगों को परस्पर लड़ने से रोकने के लिए वर्ग-चेतना की ज़रूरत है। ग़रीब मेहनतकश व किसानों को स्पष्ट समझा देना चाहिए कि तुम्हारे असली दुश्मन पूँजीपति हैं, इसलिए तुम्हें इनके हथकण्डों से बचकर रहना चाहिए और इनके हत्थे चढ़ कुछ न करना चाहिए। संसार के सभी ग़रीबों के, चाहे वे किसी भी जाति, रंग, धर्म या राष्ट्र के हों, अधिकार एक ही हैं। तुम्हारी भलाई इसी में है कि तुम धर्म, रंग, नस्ल और राष्ट्रीयता व देश के भेदभाव मिटाकर एकजुट हो जाओ और सरकार की ताक़त अपने हाथ में लेने का यत्न करो। इन यत्नों में तुम्हारा नुक़सान कुछ नहीं होगा, इससे किसी दिन तुम्हारी ज़ंजीरें कट जायेंगी और तुम्हें आर्थिक स्वतंत्रता मिलेगी।"

हमें भगतसिंह के इस कथन पर ग़ौर करते हुए वर्गीय आधार पर एकता क़ायम करते हुए अपने सभी हक़ और अधिकार को हासिल करने के लिए आगे आना होगा। जिस मिशन के लिए हमारे क्रान्तिकारी शहीद हुए थे उसे आगे बढ़ाने के लिए आज मज़दूर-मेहनतकश आवाम और ख़ासकर उनके बेटे-बेटियों को भगतसिंह सरीखे क्रान्तिकारियों के जीवन-संघर्ष से परिचित होना होगा, उनके लेखन को पढ़ना होगा और उसे समझकर उस महान लक्ष्य को आगे बढ़ाने के दिशा में काम करना होगा। यही भगतसिंह की सच्ची यादगारी हो सकती जिसे आज शासक वर्ग द्वारा भुला देने की पुरज़ोर कोशिश जारी है।

– आशीष

सिडकुल, हरिद्वार में मज़दूरों की हड्डियाँ कैसे निचोड़ी जाती हैं

एक फ़ैक्टरी से रिपोर्ट

– फ़ेबियन

हरिद्वार स्थित सिडकुल में पंखे बनाने वाली एक कम्पनी है, के.के. जी. इण्डस्ट्रीज लिमिटेड! पंखे बनाने वाली इस कम्पनी के मज़दूर ख़ुद गर्मी और घुटन-भरे माहौल में 12 घण्टे से लेकर 15-16 घण्टे तक काम करते हैं। यहाँ काम की स्थितियाँ बेहद कठिन और चुनौतीपूर्ण हैं। ये कम्पनी हैवेल्स, ओरिएण्ट, पोलर, लूमिनस, गोदरेज, सूर्या, एंकर (पैनासोनिक) आदि कम्पनियों की वेण्डर कम्पनी है। इन सभी के पंखे के.के.जी. में बनते हैं। यह सिडकुल की उन कम्पनियों में शामिल है जहाँ न्यूनतम मज़दूरी बहुत ही कम है और काम के न्यूनतम घण्टे 12 हैं।

के.के.जी. कम्पनी में दिसम्बर-जनवरी से लेकर जून तक प्रोडक्शन की गति बहुत तेज़ होती है। इस दौरान इस कम्पनी में क़रीब 1000 मज़दूर काम करते हैं। लेकिन जुलाई से नवम्बर तक माँग के अनुसार प्रोडक्शन धीमा कर दिया जाता है। इस दौरान कम्पनी में महज़ 400 मज़दूर ही काम करते हैं। यानी लगभग 60 प्रतिशत मज़दूरों की छँटनी कर दी जाती है। मज़दूरों की छँटनी में कोई विघ्न-बाधा न पैदा हो, इस कारण प्रोडक्शन के ज़्यादातर काम ठेके व पीस रेट पर कराये जाते हैं। कम्पनी के ज़्यादातर मज़दूरों को लगता है कि कम्पनी मज़दूरों की पर्मानेण्ट भर्ती इस कारण नहीं करती है क्योंकि यहाँ सीज़न के हिसाब से काम होता है। लेकिन ऐसा है नहीं। कम्पनी अगर चाहे तो मज़दूरों की एक तय संख्या से आसानी से सालभर प्रोडक्शन जारी रख सकती है और अपने ऑर्डर की पूर्ति कर सकती है। लेकिन कम्पनी मज़दूरों के प्रति अपनी जवाबदेही को ख़त्म करने यानी सभी श्रम क़ानूनों को लागू न करने तथा ई.एस.आई., पी.एफ़. आदि की सुविधा न देने के लिए ही ठेका और पीस रेट से काम कराती है। ठेका और पीस रेट से उसे मनचाहा मुनाफ़ा भी ख़ूब हासिल होता है। सीज़न के समय मज़दूरों से 15-17 घण्टे तक काम लिया जाता है। अगर कम्पनी सालभर प्रोडक्शन की एक सामान्य रफ़्तार को बनाये रखे तो कोई वजह नहीं है कि मज़दूरों से सीज़न के समय 15-17 घण्टों तक काम लिया जाये। ठेके और पीस रेट से काम कराने के कारण कम्पनी अपनी ज़रूरत के हिसाब से जब चाहे तब मज़दूरों की भर्ती और छँटनी कर सकती है।

आइए, कम्पनी में काम की स्थितियों, मज़दूरों के हालात और उनकी मासिक आमदनी को जानने के लिए कम्पनी की प्रोडक्शन प्रक्रिया को समझते हैं। इस कम्पनी में अलग-अलग चरणों में प्रोडक्शन के 9 डिपार्टमेण्ट हैं। सबसे पहले स्टोर डिपार्टमेण्ट से कच्चा माल मोल्डिंग सेक्शन में आता है। यहाँ पंखे के मोटर को छोड़कर सारे पुर्ज़े बनते हैं। इस सेक्शन में 20-25 मज़दूर काम करते हैं। उनकी मज़दूरी 12 घण्टे प्रतिदिन के हिसाब से 30 दिन की मात्र 12000/- रुपये है। इस कम्पनी में मज़दूरों को सीधे 12 घण्टे 30 दिन की ही मज़दूरी बतायी जाती है न कि 8 घण्टे 26 दिन की। इस मज़दूरी में आठ घण्टे के बाद चार घण्टे का ओवर टाइम रेट भी जुड़ा हुआ है जो कि सिंगल रेट से दिया जाता है न कि डबल रेट से। अगर इस मज़दूरी को आठ घण्टे के हिसाब से बनाया जाये तो यह न्यूनतम वेतन से बहुत ही कम होगी। आगे जहाँ कहीं भी आप इस रिपोर्ट में 12 घण्टे प्रतिदिन के हिसाब से मज़दूरी पढ़ें, तो समझ जाइएगा कि यह आठ घण्टे के न्यूनतम वेतन में सिंगल रेट से ओवर टाइम जोड़कर बताया गया है।

मोल्डिंग सेक्शन के बाद प्रेस सेक्शन आता है। इस सेक्शन में पंखे के

ब्लेड, बॉडी कवर आदि पार्ट्स तैयार किये जाते हैं। इस सेक्शन के मज़दूरों को पतली व धारदार किनारों वाली मेटल शीट को उठाकर डाई मशीन में सेट करना होता है। लेकिन हाथों में सुरक्षा के नाम पर फ़ैक्टरी से उन्हें सस्ते ऊनी दस्ताने ही मिलते हैं जो काफ़ी पुराने और फटे होते हैं। मज़दूर जैसे-तैसे करके मेटल शीट्स को उठाते हैं। इस सेक्शन में भी 25-30 मज़दूर काम करते हैं जिन्हें 12 घण्टे प्रतिदिन के हिसाब से 30 दिन की मात्र 13500/- रुपये ही मज़दूरी दी जाती है।

प्रेस सेक्शन में तैयार किया गया माल पाउडर कोटिंग सेक्शन में भेज दिया जाता है। जिन पार्ट्स की वेल्डिंग होनी होती है उन्हें वेल्डिंग सेक्शन में भेजा जाता है। वेल्डिंग सेक्शन के दो हिस्से हैं। आयरन वेल्डिंग और कॉपर वेल्डिंग सेक्शन। इसमें पंखों के जालीदार कवर और कुछ अन्य पुर्ज़ों को वेल्ड किया जाता है। यह काम कम्पनी पीस रेट पर कराती है। इस सेक्शन के कारीगर मज़दूरों के काम के घण्टे निश्चित नहीं होते हैं। उन्हें अलग-अलग पार्ट्स तय टार्गेट के हिसाब से देने होते हैं। इन्हें पूरा करने में ही मज़दूरों को 12 घण्टे से 15-16 घण्टे तक लग जाते हैं। पीस रेट पर काम करने वाले इन कारीगर मज़दूरों को यह भ्रम रहता है कि वे ज़्यादा से ज़्यादा माल तैयार करके ज़्यादा से ज़्यादा मज़दूरी हासिल कर लेंगे। लेकिन 15-16 घण्टे काम करने के बावजूद भी वह औसतन 15000/- से लेकर 16500/- तक ही कमा पाते हैं। वह भी साल के कुछ ही महीने! ये मज़दूर यह नहीं देख पाते कि जो मज़दूरी वो ज़्यादा पा रहे हैं वह बाक़ी मज़दूरों की अपेक्षा काम के ज़्यादा घण्टे देकर ही आ रही है। कुल ले-देकर उनकी भी मज़दूरी बाक़ी के मज़दूरों के बराबर ही रहती है।

प्रेस सेक्शन और वेल्डिंग सेक्शन के बाद पाउडर कोटिंग सेक्शन आता है। इस सेक्शन में लगभग 150 मज़दूर काम करते हैं। इस सेक्शन में पंखों के पार्ट्स पर पेंट व पाउडर कोटिंग की जाती है। यहाँ मज़दूर 12 घण्टे पेंट व पाउडर के घुटन-भरे माहौल में काम करते हैं। कम्पनी द्वारा उन्हें मास्क तक मुहैया नहीं कराया जाता है। मज़दूर अपने मास्क का ख़ुद ही इन्तज़ाम करते हैं। इस सेक्शन में ज़्यादातर महिलाएँ काम करती हैं। इन्हें 12 घण्टे प्रतिदिन के हिसाब से 30 दिन के महज़ 8500/- रुपये ही दिये जाते हैं।

इसके बाद वाइंडिंग सेक्शन आता है जहाँ कॉपर वाइंडिंग तैयार किया जाता है। यह एक महीन काम है और इसे भी पीस रेट के हिसाब से कराया जाता है। इसके बाद असेम्बली सेक्शन में पंखा असेम्बल करके उसे पैक किया जाता है। इस सेक्शन में 9 असेम्बली लाइन चलती हैं। एक लाइन में क़रीब 70 मज़दूर काम करते हैं। इस सेक्शन में महिला मज़दूरों को 12 घण्टे प्रतिदिन के हिसाब से 30 दिन के 9000/- रुपये और पुरुष मज़दूरों को 10000/- रुपये मज़दूरी दी जाती है। स्त्री और पुरुष मज़दूरों के बीच वेतन के अन्तर को कम्पनी यह कहकर देती है कि महिला मज़दूर पुरुषों की तुलना में हल्के काम करती हैं और प्रोडक्शन भी कम देती हैं। जबकि वास्तविकता यह है कि महिला और पुरुष मज़दूर एक जैसे काम ही करते हैं। कम्पनी अपना मुनाफ़ा बढ़ाने के लिए ही इस सेक्शन में ज़्यादातर महिला मज़दूरों को ही रखती है। असेम्बली सेक्शन में तैयार माल को ऑर्डर देने वाली कम्पनियों में भेजने के लिए डिस्पैच सेक्शन में भेज दिया जाता है। इस सेक्शन में क़रीब 15 मज़दूर लगातार काम करते हैं। इस सेक्शन में ही माल की लोडिंग की जाती है।

के.के.जी. में मज़दूरों की काम करने की परिस्थितियाँ बेहद कठिन हैं और सुविधाएँ न के बराबर हैं। कम्पनी में 12-12 घण्टे की शिफ़्ट चलने के बावजूद यहाँ कोई कैण्टीन नहीं है। मज़दूरों को खाना खाने के लिए मात्र आधे घण्टे का ब्रेक दिया जाता है और उसे भी मज़दूरी में से काट लिया जाता है। यहाँ तक कि इस कम्पनी में चाय का ब्रेक भी नहीं दिया जाता है। चाय मज़दूरों को ख़ुद ख़रीदकर काम करने की जगह पर ही पीनी होती है। यहाँ काम करने की जगह बहुत थोड़ी और तंग है। पूरी फ़ैक्टरी का कम्पाउण्ड कच्चे माल, लोहे की चादरों, गत्ते आदि से भरा रहता है। कम्पनी में दो फ़्लोर ऐसे हैं जो लोहे के बीम और चादर से बनाये गये हैं। जिस वजह से यहाँ गर्मियों में बहुत गर्मी और सर्दियों में बहुत ठण्ड रहती है। पूरा ढाँचा लोहे का होने के कारण यहाँ शोर भी बहुत होता है।

सिडकुल की फ़ैक्टरियों में मज़दूरों को सुरक्षा के उपकरण मिल रहे हैं या नहीं, श्रम क़ानून लागू हो रहे हैं या नहीं, इसकी जाँच-पड़ताल करने के लिए सिडकुल में ही श्रम विभाग का कार्यालय भी है। लेकिन श्रम विभाग के अधिकारी, लेबर इंस्पेक्टर आदि सालभर कुम्भकर्णी नींद में सोये रहते हैं। साल में कभी एक दो बार यह जाग भी गये तो केवल खानापूर्ति के लिए ही फ़ैक्टरी में आते हैं। आने से पहले ये अपने मेजबान (फ़ैक्टरी मालिक) को पूर्वसूचना दे देते हैं। उसके बाद फ़ैक्टरी में इनके स्वागत की सारी तैयारियाँ पूरी कर ली जाती हैं। मज़दूरों को यह सिखा-पढ़ा दिया जाता है कि उन्हें जाँच अधिकारी से क्या बोलना है। मज़दूर भी काम छूटने के डर से मालिक द्वारा सिखायी गयी बात को ही बताते हैं। लेबर इंस्पेक्टर कभी भी फ़ैक्टरी का औचक निरीक्षण नहीं करते हैं। वे आकर मज़दूरों से पूछते हैं कि आपको दस्ताने, मास्क और सुरक्षा के उपकरण मिलते हैं या नहीं? सुपरवाइज़र और फ़ैक्टरी मालिक का व्यवहार आपके प्रति कैसा होता है? न्यूनतम मज़दूरी मिलती है या नहीं? और इन सभी सवालों के जवाब मालिकों और सुपरवाइज़रों द्वारा पहले से ही मज़दूरों को बता दिये जाते हैं। जवाब सुनकर और सन्तुष्ट होकर लेबर इंस्पेक्टर या जाँच अधिकारी मालिक के चैम्बर में मिठाइयों और पकवानों का लुत्फ़ उठाने चले जाते हैं। ये जाँच-पड़ताल की नौटंकी के.के.जी. में भी चलती रहती है।

यह कम्पनी बहुत ही चालाकी से अपने मुनाफ़े को बढ़ाते हुए और ठेका व पीस रेट के कारण मज़दूरों को बाँटने में सफल हुई है। एक ही कम्पनी के अलग-अलग सेक्शनों में मज़दूरी का अन्तर जानबूझकर किया गया है ताकि मज़दूरों के बीच एकता न बनने पाये और कम्पनी इसमें सफल भी हुई है। जो मज़दूर सबसे कम मज़दूरी पाते हैं वो अपने से ज़्यादा मज़दूरी पाने वालों से जलते हैं और जो ज़्यादा पाते हैं उन्हें लगता है कि उनकी स्थिति कम पाने वालों से थोड़ी बेहतर है। लेकिन मज़दूरों को यह समझना होगा कि मज़दूरी के इस मामूली अन्तर से कुछ फ़र्क़ नहीं पड़ता है। फ़ैक्टरी मालिक मज़दूरों को आपस में बाँटने के लिए बहुत सारे हथकण्डे अपनाते हैं, जिनमें एक ही काम के लिए और एक ही फ़ैक्टरी के अलग-अलग सेक्शनों में मज़दूरों को अलग-अलग मज़दूरी देना भी इस हथकण्डे में शामिल है। फ़ैक्टरी मालिक मज़दूरी के अन्तर के साथ ही पीस रेट, ठेका मज़दूर और परमानेण्ट मज़दूरों में भी मज़दूरों को बाँटने का काम करते हैं। मज़दूर किसी भी तरह से एकजुट न हो सकें, इसलिए असेम्बली लाइन को भी बिखरा दिया गया है। ख़ुद के.के.जी. में ही साल के कुछ महीने एक हज़ार मज़दूर काम करते हैं और कुछ महीने चार सौ के क़रीब। ऐसे में मज़दूरों की यूनियन बनना और उनका एकजुट होना बहुत ही मुश्किल है। अगर आप बिगुल के पाठक रहे हैं तो आपको पता ही होगा कि बिगुल के अलग-अलग लेखों में यह बात सालों से की जा रही है कि आज फ़ैक्टरी आधारित यूनियन बनाना और केवल एक फ़ैक्टरी के आन्दोलन को विजय तक पहुँचाना कितना कठिन हो गया है। इसलिए आज के दौर में अगर मज़दूरों को अपने हक़-अधिकार की लड़ाई लड़नी है और उसे जीत के मुक़ाम तक पहुँचाना है तो हमें पेशा आधारित और इलाक़ा आधारित यूनियन बनाने पर ज़ोर देना होगा। यह बात के.के.जी. के साथ ही पूरे सिडकुल की कम्पनियों पर लागू होती है। सिडकुल की ज़्यादातर कम्पनियों में कोई यूनियन नहीं है। अगर किसी कम्पनी में है भी तो केवल खानापूर्ति के लिए! ज़्यादातर यूनियन मालिकों की जेबी यूनियन हैं जो मज़दूरों के बहुतायत का प्रतिनिधित्व नहीं करती हैं। इसलिए आज यह ज़्यादा ज़रूरी है कि मज़दूर नये सिरे से पेशागत और इलाक़ागत यूनियन बनाने की तरफ़ आगे बढ़ें। के.के.जी. सहित सिडकुल की लगभग सभी कम्पनियों के मज़दूरों की माँगें, मुद्दे और नारे एक ही हैं। इसके साथ ही सभी मज़दूर चाहे वो ठेका के तहत हों, पीस रेट से काम करते हों या फ़ैक्टरी के परमानेण्ट मज़दूर हों, एक ही इलाक़े में, एक ही जीवन-परिस्थितियों में रहने के लिए मजबूर भी हैं।

बेरोज़गारी की विकराल स्थिति

(पेज 1 से आगे)

का नियमित अन्तराल पर आने वाला मुनाफ़े की दर का संकट है।

पिछले आठ वर्षों में, यानी मोदी सरकार के सत्ता में आने के बाद से क़रीब 22 करोड़ लोगों ने केन्द्र सरकार की नौकरियों के लिए आवेदन किया। इनमें से मात्र 7 लाख लोगों को नौकरियाँ मिलीं, यानी मात्र 0.33 प्रतिशत। भारत में रोज़गार योग्य आयु के कुशल युवाओं की कुल आबादी का 33 प्रतिशत बेरोज़गार है। रोज़गार योग्य आयु, यानी 15 से 60 वर्ष के बीच की कुल आबादी के 40 प्रतिशत से भी कम लोगों के पास रोज़गार है। पूरी दुनिया का औसत देखें तो रोज़गार योग्य आयु के कुल 60 प्रतिशत लोगों के पास रोज़गार है। यानी भारत में रोज़गार योग्य आयु की कुल आबादी के 60 प्रतिशत लोग बेरोज़गार हैं। 2003 से 2014 के बीच ग़ैर-कृषि क्षेत्र में हर वर्ष औसतन लगभग 75 लाख नये रोज़गार पैदा हो रहे थे। लेकिन 2016 में मोदी सरकार द्वारा उठाया गया नोटबन्दी का पागलपन-भरा क़दम इतना घातक सिद्ध हुआ कि वह 2019 में घटते-घटते 29 लाख रोज़गार प्रति वर्ष तक पहुँच गया था। कोविड लॉकडाउन के दौरान यह और भी कम हो गया। नोटबन्दी से लेकर कोविड लॉकडाउन के बीच ही क़रीब 4 करोड़ लोग अपने रोज़गार से हाथ धो बैठे थे। इसी दौर में, निजी क्षेत्र में भी नौकरियाँ नहीं पैदा हो रही थीं। नतीजतन, लोगों के बीच सरकारी रोज़गार के लिए बेचैनी और भी बढ़ी और यही कारण है कि पिछले आठ वर्षों में 22 करोड़ लोगों ने सरकारी नौकरियों के लिए आवेदन किया हालाँकि इसके एक प्रतिशत को भी नौकरी नहीं मिली।

बेरोज़गारी की दर में निरपेक्ष रूप से बढ़ोत्तरी हो रही है और इसके पीछे एक बड़ा कारण औरतों के बीच रोज़गार की घटती दर है। यह दर आज घटते-घटते सऊदी अरब के बराबर पहुँच चुकी है। यानी इस मामले में अब भारत वाक़ई 'विश्व गुरू' बन चुका है और उसकी हालत सबसे दयनीय हो गयी है। कृषि क्षेत्र में बेरोज़गारी दर में भारी बढ़ोत्तरी हुई है। कोविड लॉकडाउन के दौरान ही क़रीब 3.2 करोड़ लोगों का गाँवों की ओर पलायन हुआ, क्योंकि शहरों में वे अपने रोज़गार खो बैठे थे और नये रोज़गार के अवसर पैदा नहीं हो रहे थे। इसके कारण खेती में पहले से मौजूद भारी छिपी हुई बेरोज़गारी में और बढ़ोत्तरी हुई और वहीं दूसरी ओर खेतिहर मज़दूरों की औसत मज़दूरी में कमी आयी। ग़रीब किसान आबादी और खेतिहर मज़दूर आबादी पर इसका प्रभाव ऐसा पड़ा कि उनमें आत्महत्या की दर में भारी बढ़ोत्तरी हुई।

साथ ही, आम तौर पर बेरोज़गारी का मज़दूर वर्ग और आम मेहनतकश आबादी की औसत मज़दूरी या वेतन में भारी कमी आयी है। सरकार आँकड़ों के अनुसार ही कुल रोज़गारशुदा आबादी (जो कि कुल रोज़गार योग्य आबादी का मात्र 40 प्रतिशत है) की औसत आय अभूतपूर्व रूप से घटी है और उसका मात्र 10 प्रतिशत रु. 25,000 प्रति माह कमा पा रहा है। अब आप स्वयं सोचिए कि महँगाई के मौजूदा आलम में हर माह रु. 25,000 में कोई क्या खायेगा, क्या पहनेगा, कहाँ और कैसे रहेगा। और रु. 25,000 या उससे ज़्यादा मासिक आय मात्र 10 प्रतिशत कामगारों की होती है। बाक़ी व्यापक मज़दूर और आम मेहनतकश आबादी इससे भी कम कमाती है और उसमें भी अस्थायी मज़दूर आबादी मुश्किल से 10 से 15 हज़ार रुपये प्रति माह कमा पाती है। ऐसे में, यह क्या ताज्जुब की बात है कि भारत में कुपोषण, भुखमरी और ग़रीबी के आँकड़ों ने पिछले सारे रिकॉर्ड तोड़ दिये हैं?

2012 में खुले तौर पर बेरोज़गार लोगों की संख्या 1 करोड़ थी जो कि वास्तविक बेरोज़गारी का 1/25 के क़रीब है। लेकिन 2021 तक यह तादाद बढ़कर 4 करोड़ लोगों तक पहुँच चुकी है। शिक्षाप्राप्त युवा आबादी जो हर वर्ष बेरोज़गारों की इस फ़ौज में जुड़ रही है, उसकी तादाद क़रीब 50 लाख है और इनमें से आधे से ज़्यादा को किसी प्रकार का अस्थायी रोज़गार भी नहीं मिल पा रहा है। बेरोज़गारी की यह विकराल स्थिति क्यों हैं? आइए इसे समझते हैं।

बेरोज़गारी का पहला आधारभूत कारण होता है पूँजीवादी व्यवस्था का आर्थिक संकट। बेरोज़गारी की दर तब बढ़ती है, जब पूँजीपति वर्ग द्वारा निवेश की दर घटती है। पूँजीपति वर्ग द्वारा निवेश करने की प्रवृत्ति में कमी कब आती है? हम जानते हैं कि पूँजीपति समाज सेवा के लिए धन्धा नहीं करता है, वह अधिक से अधिक मुनाफ़ा कमाने के लिए धन्धा करता है। नतीजतन, वह तभी स्वस्थ दर से निवेश करता है, जबकि अर्थव्यवस्था में मुनाफ़े की औसत दर अच्छी हो। लेकिन मुनाफ़े की औसत दर जब गिरती है, तो निवेश की दर भी गिरती है। जब निवेश की दर गिरती है, तो श्रमशक्ति की माँग में भी गिरावट आती है। और जब श्रमशक्ति की माँग में गिरावट आती है, तो एक ओर बेरोज़गारी बढ़ती है, वहीं दूसरी ओर, रोज़गारशुदा मज़दूर व मेहनतकश आबादी की औसत मज़दूरी और वेतन में गिरावट आती है और नतीजतन आम तौर पर समाज में ग़रीबी में बढ़ोत्तरी होती है, लोगों के उपभोग में कमी आती है, ख़रीदारी में कमी आती है। ऐसे में, कई सतही अर्थशास्त्रियों को लगता है कि समाज में लोगों में ख़रीदने की क्षमता में कमी आना संकट का कारण है, जबकि यह केवल लक्षण होता है। यह बात वे समझ जाते यदि वे यह समझ पाते कि क्रय क्षमता में कमी या बढ़ोत्तरी स्वयं कोई प्राकृतिक परिघटना नहीं है, बल्कि मुनाफ़े की दर में आने वाले परिवर्तनों का ही एक लक्षण है।

बहरहाल, सवाल यह है कि पूँजीवादी व्यवस्था में नियमित अन्तरालों पर मुनाफ़े की गिरती दर का संकट पैदा ही क्यों होता है? यह इसलिए होता है कि पूँजीपति वर्ग आपसी प्रतिस्पर्धा के ज़रिए अधिक से अधिक मुनाफ़ा कमाने की अन्धी हवस का ग़ुलाम होता है। हर पूँजीपति दो प्रतिस्पर्द्धाओं में लगा होता है : पहली प्रतिस्पर्धा है स्वयं पूँजीपतियों के बीच की प्रतिस्पर्धा। हर पूँजीपति श्रम की उत्पादकता को बढ़ाकर अपने माल के उत्पादन की लागत को कम-से-कम करना चाहता है, ताकि वह अपने माल को अधिक से अधिक सस्ता बेच सके। इसके लिए एक ओर वह मज़दूरों की मज़दूरी को कम-से-कम रखने का प्रयास करता है, जिसकी एक भौतिक सीमा होती है और वहीं दूसरी ओर वह श्रम की उत्पादकता को बढ़ाने के लिए उन्नत से उन्नत मशीनों और तकनोलॉजी का इस्तेमाल करता है। जब कुछ पूँजीपतियों द्वारा उन्नत तकनोलॉजी व मशीनें लगाकर मालों के उत्पादन की लागत को कम किया जाता है, तो उन पूँजीपतियों को अन्य पूँजीपतियों से अधिक मुनाफ़ा, यानी औसत मुनाफ़े से ऊपर अतिरिक्त या बेशी मुनाफ़ा हासिल होता है। क्यों? क्योंकि हर माल की क़ीमत उस माल के उत्पादन की औसत स्थितियों से तय होती है न कि ज़्यादा कुशल व उत्पादक पूँजीपतियों के उत्पादन की स्थिति से। नतीजतन, यदि किसी एक क्षेत्र या सेक्टर के पूँजीपति औसतन अपना माल प्रति इकाई रु. 10 की लागत पर बनाते हैं और उसी क्षेत्र के कुछ पूँजीपति उन्नत मशीनों व तकनोलॉजी के बूते यही माल रु. 5 में बना लेते हैं, तो भी उस समूचे सेक्टर में पैदा हो रहे इस माल का सामाजिक मूल्य रु. 10 ही होता है, लेकिन अधिक उन्नत तकनोलॉजी व मशीनों का उपयोग करने वाला पूँजीपति उसे रु. 5 से अधिक और रु. 10 से कम क़ीमत पर बेच सकता है। इसके ज़रिए जहाँ उसे औसत मुनाफ़े से ऊपर बेशी मुनाफ़ा प्राप्त होता है, वहीं वह बाक़ी पूँजीपतियों को बाज़ार की प्रतियोगिता में पीट सकता है और कालान्तर में निश्चित स्थितियों में उनमें से कुछ को ख़रीदकर निगल भी सकता है। हर सेक्टर में यह प्रक्रिया जारी रहती है और सभी सेक्टरों के बीच भी यह प्रतिस्पर्धा जारी रहती है। लेकिन जब इस प्रकार की प्रतिस्पर्धा चलती है तो जो पूँजीपति इसमें जीवित बचते हैं, वे भी कालान्तर में उन्नत मशीनें व तकनोलॉजी लगाने को बाध्य होते हैं, ताकि वे प्रतिस्पर्द्धी बने रह सकें। इसके कारण, अन्तत: समूची अर्थव्यवस्था में ही मशीनों और तकनोलॉजी पर निवेश श्रमशक्ति पर निवेश के मुक़ाबले सापेक्षिक तौर पर बढ़ता है। लेकिन हम जानते हैं कि हर माल का मूल्य उसमें लगे औसत सामाजिक श्रम से तय होता है। यदि नये मूल्य को पैदा करने वाले इस जीवित श्रम की मात्रा मशीनों, कच्चे माल, अवरचना आदि पर निवेश के मुक़ाबले सापेक्षिक तौर पर घटती है, यानी जीवित श्रम की मात्रा मृत श्रम (यानी अतीत में श्रम द्वारा उत्पादित उत्पादन के साधनों) के मुक़ाबले घटती है, तो फिर कुल नया उत्पादित मूल्य कुल निवेश के मुक़ाबले सापेक्षिक तौर पर घटता है। और मुनाफ़े की दर क्या है? मुनाफ़े की दर कुल नये उत्पादित मूल्य के एक हिस्से यानी बेशी मूल्य और कुल निवेश का अनुपात होता है। कुल नये उत्पादित मूल्य का दूसरा हिस्सा होता है मज़दूरी, यानी श्रमशक्ति की क़ीमत, जो कि स्वयं कुल निवेश का ही एक हिस्सा होता है। इसलिए यदि उतने ही मज़दूर अधिक अतिरिक्त श्रम करते हैं, उनके शोषण की दर बढ़ती है और इसलिए बेशी मूल्य की दर बढ़ती है, तो मुनाफ़े की दर भी बढ़ती है। ऐसा तब होता है जब उत्पादकता बढ़ती है। लेकिन यदि उत्पादकता नहीं बढ़ रही है और मशीनों, कच्चे माल व अन्य उत्पादन के साधनों पर निवेश बढ़ रहा है, या फिर उत्पादकता के बढ़ने की दर मशीनों, कच्चे माल व अन्य उत्पादन के साधनों पर निवेश के बढ़ने की दर से कम है, तो फिर मुनाफ़े की दर में गिरावट आती है।

इसी प्रकार पूँजीपति वर्ग मज़दूर वर्ग से भी एक प्रतिस्पर्धा में लगा होता है : नये उत्पादित मूल्य में मज़दूरी को निरपेक्ष और/या सापेक्ष रूप से घटाना और बेशी मूल्य यानी मुनाफ़े के हिस्से को सापेक्षिक और/या निरपेक्ष पर बढ़ाने की प्रतिस्पर्धा, जबकि मज़दूर वर्ग अपने संगठित संघर्षों के ज़रिए लगातार मज़दूरी के हिस्से को बढ़ाने का प्रयास करता है। इस प्रतिस्पर्धा के जवाब में भी तमाम पूँजीपति वर्ग अधिक से अधिक उन्नत तकनोलॉजी लगाकर मज़दूरों पर अपनी निर्भरता को कम करने का प्रयास करते हैं, छँटनी करते हैं और मज़दूरों की मोलभाव की ताक़त को कम करने की कोशिश करते हैं। इसके लिए भी पूँजीपति वर्ग को आम तौर पर कुल निवेश में मृत श्रम (यानी उत्पादन के साधनों) पर निवेश को बढ़ाना पड़ता है। जब तक यह प्रक्रिया कुछ पूँजीपतियों तक सीमित होती है, तब तक कुल अर्थव्यवस्था की मुनाफ़े की औसत दर पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ता है, बल्कि उन पूँजीपतियों को बेशी मुनाफ़ा हासिल होता है। लेकिन जैसे-जैसे अधिकांश पूँजीपति इस प्रतिस्पर्धा में उन्नत मशीनों व तकनोलॉजी पर निवेश को बढ़ाते हैं, वैसे-वैसे कुल अर्थव्यवस्था की मुनाफ़े की औसत दर में कमी आती है। यानी इन दोनों ही प्रतिस्पर्द्धाओं के कारण पूँजीपति वर्ग द्वारा उत्पादन के साधनों पर निवेश श्रमशक्ति पर निवेश के सापेक्ष बढ़ता जाता है और मुनाफ़े की औसत दर में गिरावट की प्रवृत्ति पैदा होती है।

यानी बाज़ार पूँजीपति वर्ग को इन दो प्रतिस्पर्द्धाओं में लगातार लगे रहने को बाध्य करता है और मज़दूरों के शोषण की दर को बढ़ाने और बेशी मूल्य की दर को बढ़ाने के लिए जिन तरीक़ों का इस्तेमाल किया जाता है, ठीक उन्हीं तरीक़ों के चलते अन्तत: मुनाफ़े की दर में गिरने की प्रवृत्ति पैदा होती है, जो नियमित अन्तरालों पर पूँजीवादी व्यवस्था को अपने आगोश में लेती रहती है। आज हम जिस आर्थिक संकट के साक्षी बन रहे हैं वह पूँजीपति वर्ग की इसी मुनाफ़े की हवस से पैदा हुआ मुनाफ़े की गिरती औसत दर का संकट ही है। आइए इसे कुछ आँकड़ों से समझते हैं।

सकल घरेलू उत्पाद की दर बिल्कुल सटीकता से मुनाफ़े की औसत दर को नहीं दिखलाती लेकिन यह उसका एक लक्षण अवश्य होती है। हमारे देश में 2003-04 से लेकर 2014-15 के बीच सकल घरेलू उत्पाद की विकास दर औसतन 8 प्रतिशत रही थी, जो कि कुछ मामलों में हमारे देश के आधुनिक इतिहास में अभूतपूर्व थी। लेकिन 2015 से और विशेष तौर पर 2016 से इसमें तेज़ी से गिरावट आनी शुरू हो गयी। इसमें नोटबन्दी और फिर अनियोजित तरीक़े से मोदी सरकार द्वारा थोपे गये लॉकडाउन की विशेष भूमिका थी। लेकिन इन कारकों ने बाह्य प्रेरक शक्तियों की ही भूमिका निभायी क्योंकि वैश्विक तौर पर मुनाफ़े की औसत दर के गिरने का संकट 2012 से ही भारतीय अर्थव्यवस्था को अपनी गिरफ़्त में लेने लगा था। मोदी सरकार की पूँजीपरस्त और कई बार मूर्खतापूर्ण जनविरोधी नीतियों ने इस संकट को और गहरा बना दिया। इसका नतीजा यह हुआ कि 2020 तक यह वृद्धि दर घटते-घटते 4 प्रतिशत तक आ पहुँची और उसके बाद लॉकडाउन के दौरान शून्य तक जा पहुँची। इसका अर्थ यह था कि निवेश दर लगातार घटती गयी। 2014 में जो निवेश दर सकल घरेलू उत्पाद के 31 प्रतिशत के ऊपर थी, वह घटते-घटते 25 प्रतिशत के भी नीचे चली गयी, जो कि भारी गिरावट थी। इसका अर्थ था रोज़गार सृजन की दर लगातार नीचे गिरना। इसके साथ ही बेरोज़गारी की दर तेज़ी से बढ़ी और

(पेज 10 पर जारी)

दलित उत्पीड़न की बढ़ती घटनाओं के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाओ!

राजस्थान में स्कूली छात्र इन्द्र मेघवाल की हत्या बढ़ती जातीय नफ़रत का नतीजा है

बीते 13 अगस्त को राजस्थान के जालौर से एक दिल दहलाने देने वाली घटना सामने आयी है जिसमें 10 वर्ष के एक दलित छात्र को उसके अध्यापक ने इतना पीटा कि उसकी मौत हो गयी। उस बच्चे की ग़लती सिर्फ़ इतनी थी कि उसने अपने एक जातिवादी अध्यापक के मटके से पानी पी लिया था। उस मासूम बच्चे को यह पता नहीं था कि औपनिवेशिक ग़ुलामी से भारत की आज़ादी के 75 साल बीत जाने के बाद भी भारतीय समाज ब्राह्मणवाद-जातिवाद के कोढ़ से ग्रस्त है। 'आज़ादी के अमृत महोत्सव' और 'हर घर तिरंगा' की देश-व्यापी चीख़-पुकार के बीच उसे लगा होगा कि उसे किसी भी मटके से पानी पी लेने की आज़ादी है और उसे इस ग़लतफ़हमी की क़ीमत अपनी जान देकर चुकानी पड़ी।

यह घटना ब्रिटिश ग़ुलामी से भारत की आज़ादी के 75 वर्ष पूरे होने से महज़ दो दिन पहले की है। एक ओर भारत के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी 'हर घर तिरंगा' और 'आज़ादी के अमृत महोत्सव' जैसे जुमलों से आज़ादी की वर्षगांठ को धूमधाम से मनाने का आह्वान कर रहे हैं और देश का खाता-पीता मध्य वर्ग आज़ादी के जश्न की तैयारियों में डूबा हुआ है लेकिन दूसरी ओर भारत देश के कई तबक़े ऐसे हैं जो हज़ारों साल से ग़ुलामी की ज़ंजीरों में आज भी जकड़े हुए हैं। उन्हीं में देश की ग़रीब दलित आबादी है जो हर दिन आर्थिक शोषण और सामाजिक उत्पीड़न झेलने को अभिशप्त है।

इस घटना ने एक बार फिर से यह साफ़ कर दिया है कि मोदीराज ने सवर्णवादी मानसिकता के फलने फूलने के लिए खाद-पानी देने का काम किया है और ऐसा माहौल तैयार किया है कि सवर्णवादी गुण्डे बेख़ौफ़ घूम सकें। और इसीलिए, 2014 के बाद से दलित उत्पीड़न की घटनाओं में बेतहाशा वृद्धि हुई है। वहीं, राजस्थान में कांग्रेस के मुख्यमंत्री अशोक गहलोत के 'सुशासन' की असलियत भी सबके सामने है। राजस्थान में पिछले तीन साल के आँकड़े बताते हैं कि यहाँ दलित उत्पीड़न की घटनाओं की बाढ़-सी आ गयी है। महज़ तीन साल में दलित उत्पीड़न के क़रीब 21000 मामले दर्ज हुए हैं। तुलनात्मक आँकड़ों की बात करें तो दलितों पर होने वाले अत्याचार के मामले हर साल 23 फ़ीसदी की दर से बढ़ रहे हैं। राजस्थान की कांग्रेस सरकार दलित उत्पीड़न के मामलों पर अंकुश लगाने में नाकामयाब रही है।

साथ ही साथ, जालौर के जातिवादी मास्टर छैलसिंह के ज़ुल्म का मामला हिन्दू "एकता" के तमाम ठेकेदारों के मुँह पर तमाचा है। ऐसी घटनाएँ राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, भाजपा, विश्व हिन्दू परिषद्, बजरंग दल जैसे स्वयम्भू पहरेदारों की असलियत भी उजागर कर देती हैं। ऐसी दलित उत्पीड़न की सभी घटनाओं पर संघ परिवार अक्सर मौन रहता है हालाँकि हाथरस बलात्कार जैसी घटनाओं में इसका घोर दलित विरोधी चेहरा बेनक़ाब भी हो जाता है। संघ परिवार की दलितों के प्रति नफ़रत मुस्लिमों के प्रति उसकी नफ़रत से किसी मायने में कम नहीं है। ये वही लोग हैं जो कठुआ में एक मासूम बच्ची के बलात्कारियों और हत्यारों के समर्थन में तिरंगा मार्च निकाल रहे थे। दलितों के ख़िलाफ़ इस तरह खुलकर सामने आने से इनकी तात्कालिक राजनीतिक मजबूरियाँ इन्हे रोकती हैं, लेकिन हाथरस काण्ड जैसी घटनाओं से इनकी घिनौनी असलियत सबके सामने आ ही जाती है।

इन्द्र मेघवाल की बर्बर हत्या कोई अपवाद नहीं बल्कि जहानाबाद, बथानी टोला, खैरलांजी, मिर्चपुर, भगाणा, हाथरस, उन्नाव इत्यादि जैसे हत्याकाण्डों-नरसंहारों और बलात्कार जैसे बर्बरतम अपराधों की लम्बी फ़ेहरिस्त में एक कड़ी है। इन सब घटनाओं की तरह यह घटना भी दिखा रही है कि सवर्णवादी वर्चस्व के बर्बरतम रूपों का सामना ग़रीब, मेहनतकश दलितों को ही करना पड़ता है। हालाँकि, जातिगत अपमान का सामना तमाम दलित नौकरशाहों, नेताओं और अन्य उच्चवर्गीय दलितों को भी करना पड़ता है पर इस तरह की जातिगत उत्पीड़न की बर्बरतम घटनाएँ ज़्यादातर मेहनतकश दलितों के ख़िलाफ़ ही होती हैं। लुब्बे-लुबाब ये कि अगर आँकड़ों को उठाकर देखा जाये तो जातिगत उत्पीड़न के बर्बरतम रूपों का सामना 100 में से 99 मामलों में ग़रीब मेहनतकश दलितों को ही करना पड़ता है।

यहाँ पर यह साफ़ कर देना भी जरूरी है कि हालाँकि इन्द्र मेघवाल की हत्या एक सवर्ण जाति से आने वाले व्यक्ति ने की है लेकिन आँकड़ों से यह स्पष्ट हो जाता है कि दलितों के विरुद्ध होने वाली ज़्यादातर बर्बर घटनाएँ आज पिछड़ी जातियों के उच्चवर्गीय हिस्सों, विशेष तौर पर, धनी कुलकों-फ़ार्मरों, सूदख़ोरों आदि द्वारा अंजाम दी जा रही हैं। ये आँकड़े उन लोगों को आईना दिखाने का काम करते हैं जो बहुजन एकता (दलित-ओबीसी) का नारा बुलन्द करते रहते हैं। साफ़ तौर पर, पिछले तीन-चार दशकों ने अस्मितावादी बहुजनवाद की सीमाओं को स्पष्ट तौर पर दिखला दिया है। इसलिए ब्राह्मणवाद और सवर्णवाद का जवाब बहुजन अस्मितावाद नहीं बल्कि मेहनतकशों की वर्ग एकता है।

साथ ही, यह घटना संविधान के प्रति अन्धश्रद्धा रखने वाले विशेष तौर पर मध्यवर्गीय व उच्चमध्यवर्गीय दलितों के एक हिस्से व अन्य लोगों की आँखे खोलने के लिए भी काफ़ी है जो यह मानते हैं कि मौजूदा संविधान के ज़रिए एक समतामूलक समाज का निर्माण हो सकता है। ये लोग यह नहीं जानते हैं कि एक वर्ग विभाजित समाज में सारे क़ानून-संविधान शासक वर्ग के हितों के अनुरूप बनते हैं। भारतीय राज्य सत्ता में बैठा पूँजीपति वर्ग जातिवाद को ग़रीब दलितों तथा अन्य जाति के मज़दूरों के श्रम को लूटने और अपना मुनाफ़ा बढ़ाने के एक उपकरण के रूप में भी इस्तेमाल करता है और साथ ही इसे व्यापक मेहनतकश जनता को जाति के आधार पर बाँटने के लिए भी इस्तेमाल करता है। इसलिए मौजूदा बुर्जुआ संविधान के ज़रिए जातिवाद को ख़त्म करना और दलितों की मुक्ति का विचार शेख़चिल्ली का सपना है, और कुछ नहीं।

एक महत्वपूर्ण बात यहाँ समझना ज़रूरी है। समाज में पिछले तीन दशकों के दौरान जातिवाद और जातिगत वैमनस्य बढ़ने का एक व्यापक ऐतिहासिक सन्दर्भ भी है। यह सन्दर्भ है नवउदारवाद की नीतियों की शुरुआत के बाद से देशभर में बेरोज़गारी का बढ़ना, रोज़गार के बचे-खुचे अवसरों का समाप्त होना, महँगाई का बढ़ना और सामाजिक असुरक्षा और अनिश्चितता का एक विकराल माहौल तैयार होना। इस माहौल में मोदी सरकार के आने के बाद से विशेष तौर पर काफ़ी तेज़ बढ़ोत्तरी हुई है। पिछले कुछ सालों में ही करोड़ों रोज़गार छीन लिये गये हैं। वहीं कृषि के पूँजीवादी संकट ने मध्य जातियों की आबादी को भारी तादाद मे क़र्ज़, बर्बादी और ग़रीबी की गर्त में धकेला है और खेती से बेदख़ल किया है। नतीजतन, रोज़गार के पहले से तेज़ी से कम हो रहे अवसरों के लिए उम्मीदवारों की कहीं ज़्यादा भीड़ खड़ी है। शासक वर्ग द्वारा इस असुरक्षा और अनिश्चितता के फलस्वरूप पैदा हुई अन्धी प्रतिक्रिया के इस माहौल का फ़ायदा उठाने के लिए साम्प्रदायिकता तथा ब्राह्मणवाद व जातिवाद को बढ़ावा दिया जाता है और व्यापक ग़ैर-दलित बेरोज़गार व ग़रीब आबादी के सामने धार्मिक अल्पसंख्यकों व दलितों को नक़ली दुश्मन के रूप मे खड़ा किया जाता है। इन दोनों औज़ारों का मोदी सरकार ने बख़ूबी इस्तेमाल किया है ताकि व्यापक मेहनतकश जनता अपनी तकलीफ़ों के असली कारणों को समझने की बजाय जातिगत व धर्मगत आधार पर आपस में ही लड़ पड़े।

इसके विरोध में अखिल भारतीय जाति विरोधी मंच द्वारा दिल्ली, बिहार, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, महाराष्ट्र में प्रदर्शन भी आयोजित किये। दिल्ली में प्रदर्शन के शुरू होते ही सभी को डिटेन कर लिया गया और देर शाम तक पुलिस स्टेशन में बिठाये रखा। अलग-अलग जगह वक्ताओं ने बात रखते हुए बताया कि आज दलित उत्पीड़न की तमाम घटनाओं के ख़िलाफ़ हमें सभी मज़दूरों-मेहनतकशों की वर्ग एकजुटता बनाकर सड़कों पर उतरना होगा; अस्मितावादी राजनीति को कचरे की पेटी में फेंकना होगा, व्यवहारवादी आवेदनबाज़ी का भण्डाफोड़ करना होगा और रोज़गार, महँगाई, शिक्षा, आवास, चिकित्सा और व्यापक मेहनतकश जनता की ज़िन्दगी से जुड़े हर सवाल पर पूँजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध क्रान्तिकारी संघर्ष करना होगा क्योंकि वर्ग एकजुटता पर आधारित ऐसे ही संघर्षों के ज़रिए ही पूँजीवादी ब्राह्मणवाद और जातिवाद को फ़ैसलाकुन शिकस्त दी जा सकती है। आज हमें यह भी समझना होगा कि ग़रीब मेहनतकश ग़ैर-दलित आबादी के भीतर जातिवादी ब्राह्मणवादी विचारों के प्रभाव के ख़िलाफ़ संघर्ष करके उसे ख़त्म करना भी तभी सम्भव होगा जबकि सभी जातियों की ग़रीब मेहनतकश निम्न मध्यमवर्गीय आबादी को रोज़गार, चिकित्सा, शिक्षा, महँगाई आदि के ठोस व जीवन्त मुद्दों पर समूची पूँजीवादी व्यवस्था के ख़िलाफ़ जागृत, गोलबन्द और संगठित किया जाये। अगर व्यापक मेहनतकश आबादी में व्याप्त जातिवादी संस्कारों को दलित बनाम ग़ैर-दलित, या दलित बनाम ओबीसी जैसे अस्मितावाद का मुद्दा बनाया जाता है और जातिगत अस्मिताओं के टकराव को बढ़ावा दिया जाता है तो इससे समस्या का समाधान नहीं होगा बल्कि समस्या और उलझती चली जायेगी और इसका नुक़सान मुख्य रूप से व्यापक दलित आबादी और सामान्य रूप से समूची मेहनतकश आबादी को उठाना पड़ेगा।

– बिगुल डेस्क

बेरोज़गारी की विकराल स्थिति

(पेज 9 से आगे)

अभी भी बढ़ रही है। इसका एक कारण यह भी है कि उत्पादक अर्थव्यवस्था में मुनाफ़े की दर का संकट होने के कारण पूँजीपति सट्टेबाज़ी और वित्तीय क्षेत्र में निवेश कर रहे हैं। इस प्रकार के निवेश से बड़े पैमाने पर रोज़गार नहीं पैदा होते हैं।

जैसा कि हम देख सकते हैं, मौजूदा बेरोज़गारी के हालात पूँजीवादी व्यवस्था के संकट का परिणाम हैं, जो और कुछ नहीं बल्कि मुनाफ़े की गिरती औसत दर का संकट है जो नियमित तौर पर पूँजीवादी व्यवस्था को अपनी गिरफ़्त में लेता रहता है। और बेरोज़गारी के इस संकट को और अधिक विकराल रूप देने का काम किया मोदी सरकार की नंगी और बेशर्म पूँजीपरस्त नीतियों ने। नोटबन्दी और अनियोजित और जनविरोधी रूप में लागू किये गये लॉकडाउन की विनाशकारी नीतियों ने विशेष तौर पर यह काम किया। लेकिन उसके बाद भी मोदी सरकार द्वारा पूँजीपति वर्ग के लिए मुनाफ़े की दर को बेहतर बनाने के लिए उठाये गये तमाम क़दमों ने बेरोज़गारी को बढ़ाने और औसत मज़दूरी और जनता की औसत आय को घटाने का ही काम किया है। चाहे वह नये लेबर कोड लागू करने की तैयारी हो, लगातार जनता पर बढ़ाया जा रहा अप्रत्यक्ष करों का दबाव हो, या फिर पूँजीपतियों को देश की प्राकृतिक सम्पदा और श्रमशक्ति को खुलकर लूटने के लिए दी जाने वाली छूट हो। संकट से बिलबिला रहे पूँजीपति वर्ग ने आठ वर्ष पहले मोदी के नेतृत्व वाली फ़ासीवादी भाजपा को हज़ारों करोड़ रुपये ख़र्च करके सत्ता में पहुँचाया था और यही काम मोदी सरकार कर रही है। मज़दूर वर्ग और आम मेहनतकश आबादी ने पिछले आठ वर्षों के अपने अनुभव से समझ लिया है कि फ़ासीवादी संघ परिवार और भाजपा से बड़ा दुश्मन जनता का कोई नहीं है। लेकिन यह समझना ही काफ़ी नहीं है। सर्वहारा वर्ग को मौजूदा फ़ासीवादी निज़ाम के ख़िलाफ़ व्यापक मेहनतकश जनसमुदायों के क्रान्तिकारी जनान्दोलनों को संगठित करना होगा, चाहे वह बेरोज़गारी का मुद्दा हो, लेबर कोड का मुद्दा हो, मोदी सरकार की फ़ासीवादी और पूँजीपरस्त नीतियों का प्रश्न हो, या फिर साम्प्रदायिकता और जाति-धर्म आदि पर जनता को बाँटने की संघ परिवार की लगातार जारी साज़िशों का प्रश्न हो।

मज़दूर शिक्षण माला-4

सामाजिक अधिशेष के उत्पादन की शुरुआत और सामाजिक श्रम-विभाजन तथा वर्गों का उद्भव

– अभिनव

पूँजीवादी समाज में पूँजीपति वर्ग के मुनाफ़े के स्रोत और मज़दूर वर्ग के शोषण को समझने के लिए हमें कुछ अन्य बातों को समझना होगा, मसलन, सामाजिक अधिशेष, सामाजिक श्रम विभाजन और वर्गों का उद्भव। इन बातों को समझने के साथ हमारे लिए मज़दूर वर्ग के शोषण और पूँजीपति वर्ग के मुनाफ़े के स्रोत को समझना आसान हो जायेगा। इसलिए हम इन मूलभूत अवधारणाओं से शुरुआत करेंगे।

आदिम काल में जब मनुष्य क़बीलों में रहता था, तो उसकी उत्पादक शक्तियों के विकास का स्तर बेहद निम्न था। अभी खेती की शुरुआत नहीं हुई थी और क़बीले मुश्किल से उतना ही जुटा पाते थे और उतना ही शिकार कर पाते थे, जितना उनके जीवित रहने के लिए अनिवार्य था। कन्द-मूल एकत्र करने और शिकार पर निर्भर समाज के दौर में अनिश्चितता का तत्व काफ़ी ज़्यादा होता था क्योंकि ये आदिम क़बीले कभी इस बारे में सुनिश्चित नहीं हो सकते थे कि वे अपने जीवित रहने के लिए भोजन जुटा पायेंगे। मनुष्य अभी प्रकृति की अन्धी शक्तियों का ग़ुलाम था। हम इन्हें प्रकृति की अन्धी शक्तियाँ इसलिए कह रहे हैं क्योंकि मनुष्य अभी उनके पीछे काम करने वाली ताक़तों को नहीं समझता था। प्रकृति की शक्तियों के पीछे काम करने वाले कारणों, यानी प्रकृति के गति के नियमों को समझने के साथ ही मनुष्य स्वतंत्र होता गया क्योंकि अब वह प्रकृति की शक्तियों की अपनी बढ़ती समझदारी के अनुसार प्रकृति का अपनी आवश्यकताओं के अनुसार रूपान्तरण कर सकता था। यह समझदारी स्वयं मनुष्य के सामाजिक व्यवहार से बढ़ती गयी, यानी उत्पादन के लिए मनुष्य का संघर्ष और वैज्ञानिक प्रयोग।

बहरहाल, आदिम क़बीलाई समाज के दौर में मनुष्य अभी बस प्रकृति द्वारा दी गयी चीज़ों को हासिल कर रहा था, लेकिन वह अभी प्रकृति को सचेतन तौर पर और योजनाबद्ध रूप में बदलकर कुछ पैदा नहीं कर रहा था, यानी उत्पादन नहीं कर रहा था, क्योंकि प्रकृति के बारे में उसका ज्ञान अभी बेहद अविकसित मंज़िल में था। इस वजह से ये आदिम क़बीले कन्द-मूल इकट्ठा करके या शिकार करके जितना और जो जुटा पाते थे, उसमें एक अनिश्चितता का तत्व रहता था और वे अपनी ज़रूरत से बेशी बिरले ही जुटा पाते थे। इसलिए क़बीले के सभी लोगों का जीवन के लिए संघर्ष की इन गतिविधियों में लगे रहना अनिवार्य था और अभी श्रम का कोई सामाजिक विभाजन होना और समाज में किसी प्रकार का ऊँच-नीच का बँटवारा पैदा होना सम्भव ही नहीं था। अभी श्रम का केवल लैंगिक विभाजन और आयु के तौर पर ही विभाजन हो सकता था, जो कि जैविक विशिष्टताओं के कारण होने वाला विभाजन था, न कि उत्पादन की बेशी मात्रा के पैदा होने के साथ अस्तित्व में आने वाला सामाजिक श्रम विभाजन। आदिम क़बीले में शिकार आदि की कार्रवाई में शारीरिक या मानसिक क्षमता के आधार पर नेतृत्व की भूमिका निश्चित व्यक्तियों को सौंपी जाती थी, लेकिन यह इन व्यक्तियों को कोई विशेषाधिकार नहीं देता था। यानी इस वजह से ये व्यक्ति ज़्यादा भोजन नहीं ले सकते थे। नेतृत्व की ज़िम्मेदारी तमाम अन्य ज़िम्मेदारियों की तरह एक ज़िम्मेदारी थी। चूँकि अभी ये आदिम क़बीले मुश्किल से अपने जीवन को न्यूनतम स्तर पर बनाये रखने योग्य भोजन व संसाधन ही जुटा पाते थे, इसलिए कोई भी व्यक्ति यदि अपनी न्यूनतम आवश्यकताओं से ज़्यादा हड़पने का प्रयास करता तो क़बीले का अस्तित्व ही सम्भव नहीं रह जाता और क़बीला टूट जाता। इसलिए क़बीलाई समाज एक प्रकार का आदिम साम्यवादी समाज था, जिसमें अभाव और अज्ञान द्वारा आरोपित एक समानता थी।

नवपाषाण युग में, यानी आज से क़रीब 12,000 साल पहले, जब वर्तमान अरब जगत (फ़िलिस्तीन, सीरिया, लेबनॉन, आदि) के एक हिस्से में पहली बार खेती की शुरुआत हुई। खेती की शुरुआत के साथ पहली बार इन्सान ने सिर्फ़ प्रकृति द्वारा प्रदत्त चीज़ों को ग्रहण करने की बजाय प्रकृति को बदलकर अपनी आवश्यकता के अनुसार चीज़ों को पैदा करने की शुरुआत की। यह सदियों में प्रकृति के बारे में विकसित हुआ मनुष्य का ज्ञान ही था, जिसके कारण कृषि की शुरुआत हुई। इसके साथ, मनुष्य की प्रकृति की समझदारी और उसे अपनी आवश्यकतानुसार बदलने की शक्ति में एक गुणात्मक परिवर्तन आया। दूसरे शब्दों में, उसकी उत्पादक शक्तियों का एक गुणात्मक विकास हुआ। समाज में हर नया चरण अन्तत: उत्पादक शक्तियों में गुणात्मक परितर्वन के साथ आता है, हालाँकि यह प्रक्रिया अपने आप नहीं घटित होती बल्कि इसमें इन्सानों का सामाजिक व्यवहार केन्द्रीय भूमिका निभाता है। नवपाषाण युग में एक क्रान्ति हुई, जिसके साथ मनुष्य अपने सामाजिक विकास के एक नये स्तर पर छलाँग लगाने के लिए तैयार हो गया। कृषि की शुरुआत के साथ वह पूर्वशर्त पूरी हो गयी जिसके साथ मनुष्य पहली बार अपनी न्यूनतम भौतिक आवश्यकताओं से बेशी चीज़ें पैदा कर सकता था। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं था कि खेती की शुरुआत के साथ ही बेशी उत्पादन भी शुरू हो गया। खेती की शुरुआत के बाद भी लम्बे समय तक आदिम क़बीले घुमन्तू शिकारी व कन्द-मूल संग्राहकों के रूप में जीते रहे और खेती के विकास के एक निश्चित स्तर पर ही जाकर ये क़बीले घुमन्तू जीवन-पद्धति छोड़कर निश्चित इलाक़ों में बसने लगे। एक लम्बी प्रक्रिया में खेती उत्पादन समाज की न्यूनतम आवश्यकताओं से अधिक पैदा करने की स्थिति में पहुँचा।

लेकिन जैसे ही यह स्थिति आयी, वैसे ही क़बीलाई समाज के सामुदायिक और सामूहिकतावादी जीवन के ख़ात्मे की शुरुआत हो गयी। क्योंकि जब बेशी सामाजिक उत्पाद अस्तित्व में आता है, तभी इस बेशी सामाजिक उत्पाद पर क़ब्ज़े के लिए संघर्ष की शुरुआत होती है। यानी जब समाज में मनुष्यों की उत्पादक शक्तियों का विकास इस स्तर पर पहुँच जाता है कि वे नियमित तौर पर अपनी न्यूनतम आवश्यकताओं से अधिक उत्पादन करने लगते हैं, तब इस बेशी उत्पादन को हड़पने का झगड़ा भी शुरू होता है। इससे पहले जो सामुदायिकता और सामूहिकता क़बीलाई समाज में मौजूद थी, वह अभाव और प्रकृति की समझदारी के बेहद आदिम स्तर पर होने की स्थितियों द्वारा थोपी गयी सामुदायिकता और सामूहिकता थी। लेकिन इसकी वजह से समाज में कोई ऊँच-नीच नहीं थी, शोषण और उत्पीड़न नहीं था और समानता थी। इसलिए जब मनुष्यों की उत्पादक शक्तियों के विकास के साथ सामुदायिक क़बीलाई समाज का पतन हुआ, तो यह तात्कालिक तौर पर एक तकलीफ़देह प्रक्रिया थी, जिसने ग़ुलामी, पराधीनता और शोषण-उत्पीड़न को जन्म दिया। *लेकिन ऐतिहासिक तौर पर यह एक अग्रवर्ती क़दम था।* इस अधिशेष उत्पादन के बिना न तो समाज में कारीगर पैदा हो सकता था, न किसान, न कलाकार, न वैज्ञानिक और न ही दार्शनिक-चिन्तक। मनुष्य इसके बिना प्रकृति की अन्धी शक्तियों का ग़ुलाम ही बना रहता, असुरक्षा, अभाव और अनिश्चितता में अपना जीवन व्यतीत करता रहता। इसलिए *ऐतिहासिक तौर पर* उत्पादक शक्तियों के विकास के साथ आदिम क़बीलाई समाज का विघटन और पहले वर्ग समाजों का उदय ऐतिहासिक तौर पर एक प्रगतिशील परिघटना थी, हालाँकि तात्कालिक तौर पर इसने सामुदायिकता और सामूहिकता की भावना को विघटित किया, जो कि आदिम समाज की पहचान थी। और वैसे भी इतिहास की यात्रा यहाँ रुकनी भी नहीं थी। उसे अभाव द्वारा थोपी गयी सामूहिकता से प्रचुरता द्वारा जन्मी उन्नत और सचेतन सामूहिकता की ओर जाना है, यानी समाजवाद के संक्रमण से होते हुए कम्युनिज़्म तक जाना है क्योंकि समाज का ज्ञान बताता है कि किसी भी इच्छा से स्वतंत्र यही समाज की गति की दिशा है, जैसा कि हम आगे तथ्यों और प्रमाणों के साथ देखेंगे।

बहरहाल, जब समाज में अधिशेष उत्पादन सम्भव हो जाता है, तो समाज का कुल श्रम महज़ **अनिवार्य या आवश्यक श्रम** की श्रेणी में नहीं आता है। आवश्यक श्रम वह श्रम होता है जो समाज के लोगों की न्यूनतम भौतिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए आवश्यक या अनिवार्य होता है। अब जबकि समाज में उत्पादक शक्तियों का विकास इससे ऊपर की मंज़िल में पहुँच चुका है, तो ज़ाहिर है कि इस आवश्यक श्रम के अलावा, समाज के लोग **अतिरिक्त श्रम** भी कर रहे हैं, जो कि समाज की न्यूनतम आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए आवश्यक उत्पादन के ऊपर बेशी उत्पाद या सामाजिक अधिशेष को पैदा कर रहा है। *यह अतिरिक्त श्रम समाज के एक हिस्से को उत्पादक श्रम करने और उत्पादन में हिस्सेदारी करने की अनिवार्यता से मुक्त कर सकता है और अन्तत: अनिवार्यत: ऐसा करता ही है।* जो लोग क़बीलाई या किसी न किसी प्रकार के सामुदायिक समाज में नेतृत्वकारी भूमिका निभाते थे या किसी रूप में विशिष्ट भूमिका में थे, उन्होंने इस अधिशेष पर क़ब्ज़ा करने की शुरुआत की। मसलन, कुछ सभ्यताओं में शुरू में क़बीले के प्रमुख या प्रधानों ने शुरू में अन्न के भण्डारग्रहों के रखवाले की भूमिका निभानी शुरू की। बाद में, वे इसके मालिक बन बैठे। उसी प्रकार, कुछ अन्य जगहों पर इस बेशी उत्पाद पर हिंसक तरीक़ों से क़ब्ज़े हुए। यह सामाजिक अधिशेष का पैदा होना ही था, जिसने समाज में शासक वर्गों को जन्म दिया। यह प्रक्रिया कई सौ सालों में घटित हुई और क़बीलाई समाज का विघटन हुआ। इसके साथ वर्ग समाज अस्तित्व में आया।

इस मंज़िल के आने के बाद से समाज के उत्पादक श्रम को दो हिस्सों में बाँटा जा सकता है : अनिवार्य श्रम और अतिरिक्त श्रम। अनिवार्य श्रम द्वारा जो उत्पाद पैदा होता है वह उत्पादक वर्गों के जीविकोपार्जन के लिए आवश्यक उत्पाद है और उसे **आवश्यक या अनिवार्य उत्पाद** कहा जा सकता है। जबकि उत्पादक वर्ग जो अतिरिक्त श्रम करते हैं, उससे **अतिरिक्त उत्पाद** पैदा होता है, जिसे शासक वर्ग हड़प लेते हैं।

मिसाल के तौर पर, भारत में प्राचीन सोलह जनपदों के काल के ठीक पहले, यानी वैदिक काल के उत्तरार्द्ध में, आज से क़रीब तीन हज़ार साल पहले, खेती का उत्पादन करने वालों से क़बीलाई सरदारों व पैदा हो रही राज्यसत्ता को चलाने वालों ने 'स्वैच्छिक कर' लेने की शुरुआत की थी। भारत में यही दौर लोहे के इस्तेमाल के साथ गंगा के मैदानों से जंगल की सफ़ाई का दौर था। इसी दौर में, गंगा के उपजाऊ मैदानों में खेती का विस्तार हो रहा था और अधिशेष उत्पादन बढ़ रहा था। इस दौर में, *बलि* नामक 'स्वैच्छिक करों' की शुरुआत हुई, जो कि प्रत्यक्ष खेतिहर उत्पादकों को अनिवार्यत: शासक वर्गों को देना पड़ता था। बाद में, यह अनिवार्य करों की व्यवस्था में तब्दील हो गया। आज से क़रीब 2600 साल पहले गंगा के मैदानों में जिन सोलह राज्यों का उदय हुआ, उनमें राज्यसत्ता और शासक वर्ग इन लगानों व करों के द्वारा प्रत्यक्ष उत्पादकों के अतिरिक्त श्रम को हड़पकर ही अपने वजूद को बनाये रख सकते थे। इन शासक वर्गों के प्रश्रय के आधार पर ही समाज का तत्कालीन बौद्धिक तबक़ा, यानी कलाकार, नाटककार, दार्शनिक, अर्थशास्त्री, वैज्ञानिक, गणितज्ञ आदि-आदि भी अस्तित्व में आये जो कि *आम तौर पर* शासक वर्ग की सेवा में ही लगा हुआ था, हालाँकि ऐसे बौद्धिक भी पैदा हुए जो भौतिकवादी थे, ब्राह्मणों व क्षत्रियों के वर्चस्व को चुनौती देते थे, जो कि हर जगह शासक वर्ग की भूमिका में थे, और साथ ही जनता का पक्ष लेते थे। लेकिन ऐसे बौद्धिक भी समाज में सामाजिक अधिशेष उत्पादन, सामाजिक वर्ग विभाजन और वर्ग विभाजन के पैदा हुए बग़ैर नहीं पैदा हो सकते थे। बहरहाल, जैसे-जैसे लगानों और करों की यह समूची व्यवस्था विकसित हुई वैसे-वैसे इन शासक वर्गों ने कारीगरों और दस्तकारों पर भी कर लगाये। *बलि, भाग, कर* आदि नाम से तमाम ऐसे लगान व कर अब प्रत्यक्ष उत्पादक आबादी से वसूले जा रहे थे। इन सोलह जनपदों में से एक के, यानी मगध के विस्तार के साथ ही मौर्य साम्राज्य के पैदा होने की ज़मीन तैयार हुई। मौर्य समाज पहला राजवंश था और उसके पैदा होने के बाद राज्यसत्ता और भी अधिक विस्तारित हुई। पहली बार स्थायी सेना व नौकरशाही अस्तित्व में आयी, भूमि लगान व्यवस्था व्यवस्थित हुई, समान नाप व भार को परिभाषित किया गया, अर्थशास्त्र, दर्शन, साहित्य-कला का विकास एक नये स्तर पर पहुँचा, और इसी के साथ शासक वर्गों और उनकी सेवा में सन्नद्ध मध्यवर्गीय बौद्धिकों, कलाकारों, आदि का तबक़ा विस्तारित हुआ। इसी दौर में, उत्पादकता में भी भारी बढ़ोत्तरी हुई। दास श्रम पहले ही अस्तित्व में आ चुका था, लेकिन भारतीय इतिहास में पहली बार दास श्रम का घरेलू इस्तेमाल करने के साथ-साथ उन्हें उत्पादक श्रम में भी लगाया गया। राज्यसत्ता के मालिकाने वाली ज़मीन (जिसे मौर्यकाल में *सीता भूमि* कहा

(पेज 12 पर जारी)

सामाजिक अधिशेष के उत्पादन की शुरुआत और सामाजिक श्रम-विभाजन तथा वर्गों का उद्भव

(पेज 11 से आगे)

जाता था) पर मुक्त किसानों को भूमि के टुकड़े आबण्टित करने के साथ, दास श्रम से भी खेती करवायी जाती थी। इसके साथ ही प्रत्यक्ष उत्पादकों से अतिरिक्त श्रम व उसके अतिरिक्त उत्पाद को हड़पने के तरीक़ों का भी विस्तार हुआ। नये-नये करों, लगानों आदि के ज़रिए अतिरिक्त उत्पाद को शासक वर्ग द्वारा हड़पा जाने लगा। भारतीय इतिहास में हम सामाजिक अधिशेष के पैदा होने, वर्ण (जो कि पैदा होने के समय वर्ग ही थे) के पैदा होने, राज्यसत्ता के पैदा होने की पूरी प्रक्रिया को हम स्पष्ट तौर पर देख सकते हैं।

वास्तव में, शासक वर्ग किस प्रकार से अतिरिक्त श्रम और उससे पैदा होने वाले अतिरिक्त उत्पाद को हड़पते हैं, इसी से तय होता है कि समाज विकास की किस मंज़िल में है। मसलन, हम यदि पूँजीवाद से पहले की सामाजिक व्यवस्थाओं की बात करें, तो उसमें अतिरिक्त श्रम को किसी न किसी **आर्थिकेतर तरीक़े** से वसूला जाता था, यानी *राजकीय नियम-क़ायदे, क़ानून, धर्म, सामाजिक परम्परा* आदि के आधार पर। मिसाल के तौर पर, सोलह जनपदों के दौर में **जातक कथाओं** के द्वारा यह जानकारी प्राप्त होती है कि धार्मिक ग्रन्थों में ऐसे नियम-क़ायदे लिखे गये जिसके अनुसार किसानों (जो कि उस समय मुख्यत: वैश्य वर्ण की आबादी से आते थे), अधीनस्थ श्रमिकों व दास (जो कि उस समय मुख्यत: शूद्र वर्ण से आते थे) को कुछ विशिष्ट कर देने होते थे, कुछ विशिष्ट लगान देने होते थे, जिन्हें न दिये जाने पर उन्हें दण्डित किया जा सकता था। साथ ही, कई कर ऐसे होते थे जिन्हें ज़बरन वसूलने का अधिकार शासक वर्ग के पास था, जैसे कि *तुण्डिया* व *अकासिया* नामक कर अधिकारियों द्वारा ज़बरन वसूले जाने वाले कर। उसी प्रकार, कारीगरों-दस्तकारों और साथ ही अधीनस्थ श्रमिकों को महीने के कुछ दिनों राजा व शासक वर्ग के लोगों के लिए काम करना पड़ता था। यानी आर्थिकेतर उत्पीड़न के ज़रिए भूदासों, निर्भर किसानों, या कारीगरों-दस्तकारों के अतिरिक्त श्रम और उसके अतिरिक्त उत्पाद को शासक वर्ग और उसकी राज्यसत्ता द्वारा हड़पा जाता था। कहीं पर यह श्रम लगान या श्रम कर के रूप में होता था, जैसे कि सप्ताह या महीने के कुछ निश्चित दिनों प्रत्यक्ष उत्पादकों को शासक वर्ग के लिए मुफ़्त में काम करना पड़ता था, जिसके बदले उसे कुछ भी नहीं मिलता था। उसी प्रकार, यह उत्पाद का रूप ले सकता था, मसलन, किसानों को अपने उत्पाद का एक तिहाई या एक चौथाई राजा या भूस्वामी को देना पड़ता था। उस दौर में, ब्राह्मण-क्षत्रिय वर्ण मिलकर शासक वर्ग का निर्माण करते थे। और बाद के दौर में, लगान ने मुद्रा-रूप भी ग्रहण किया, जिसके अनुसार, प्रत्यक्ष उत्पादक को मुद्रा में निर्धारित एक निश्चित कर या लगान देना पड़ता था। पूँजीवाद के पहले के दौर की सभी वर्गीय व्यवस्थाओं में, चाहे वह दास समाज हो, मौर्यकाल की शूद्र व वैश्य वर्ण के प्रत्यक्ष उत्पादकों के श्रम पर आधारित किसान अर्थव्यवस्था हो, या फिर गुप्त काल के समय से शुरू हुई भारतीय सामन्ती व्यवस्था हो, सल्तनत काल और बाद में मुगल काल की निरंकुश सामन्ती व्यवस्था हो। उपनिवेशवाद के दौर में भी, गाँवों में किसानों से आर्थिकेतर उत्पीड़न के ज़रिए आर्थिक अधिशेष वसूलने के तंत्र को ब्रिटिश उपनिवेशिवादियों ने नहीं बदला, बस वे स्वयं उसके शीर्ष पर बैठ गये और सामन्तों, ज़मीन्दारों को अपने मातहत कर लिया।

हम ऊपर के उदाहरणों से अतिरिक्त श्रम और आवश्यक या अनिवार्य श्रम की अवधारणाओं को समझ सकते हैं। मौर्य राजवंश के शासन के दौर में जब कोई निर्भर या अधीनस्थ किसान तीन दिन अपने भूखण्ड पर खेती करता था और चार दिन ज़मीन्दार या फिर राज्यसत्ता की *सीता* भूमि पर खेती करता था, तो पहले तीन दिन वह आवश्यक या अनिवार्य श्रम करता था जो उसके जीविकोपार्जन के लिए आवश्यक था, जबकि अगले चार दिन वह शासक वर्ग के लिए बिना किसी मेहनताने के अतिरिक्त श्रम करता था, जिसके बूते पर शासक वर्गों की राज्यसत्ता, उनके ऐशो-आराम, उन पर निर्भर बौद्धिक तबक़ों व उनके कारकूनों का जीवन चलता था। उसी प्रकार, सोलह जनपदों के दौर में जब किसी कारीगर को नियमत: महीने में चार दिन राजा के लिए काम करना पड़ता था, तो वह उसका अतिरिक्त श्रम था, जिसे धार्मिक व राजकीय नियम-क़ायदे-क़ानून के ज़रिए ज़ोर-ज़बर्दस्ती कर उससे हड़प लिया जाता था। **आम तौर पर, सामाजिक अतिरिक्त उत्पाद कुल सामाजिक उत्पाद का वह हिस्सा है जो आवश्यक उत्पाद से बेशी होता है जो कि ख़र्च श्रमशक्ति (जो कि पूँजीवाद-पूर्व अवधि में माल नहीं बनी होती है) और उत्पादन के साधनों के पुनरुत्पादन हेतु आवश्यक है, और जो आवश्यक उत्पाद के ही समान प्रत्यक्ष उत्पादक वर्गों द्वारा पैदा तो किया जाता है, लेकिन जिसे शासक वर्गों द्वारा किसी न किसी तरीक़े से और किसी न किसी रूप में हड़प लिया जाता है।** यह तरीक़ा कुछ भी हो सकता है और ये रूप कुछ भी हो सकते हैं, जैसे कि श्रम के रूप में, श्रम के उत्पाद के रूप में या श्रम के उत्पाद को बेचकर हासिल की गयी मुद्रा के रूप में।

अतिरिक्त मूल्य जो कि पूँजीवादी समाज में उद्यमी मुनाफ़े, लगान, ब्याज़ और व्यापारिक लाभ का स्रोत होता है, वास्तव में और कुछ नहीं बल्कि समाज के प्रत्यक्ष उत्पादकों, यानी सर्वहारा वर्ग, छोटे माल उत्पादकों, जैसे कि कारीगरों व छोटे किसानों के अतिरिक्त श्रम से पैदा होने वाले अतिरिक्त उत्पाद का ही एक निश्चित रूप है। **अतिरिक्त उत्पाद का यह निश्चित रूप है मौद्रिक रूप, जिसे एक ख़ास तरीक़े से हड़पा जाता है।** यह तरीक़ा आर्थिकेतर उत्पीड़न, प्रत्यक्ष हिंसा व ज़ोर-ज़बर्दस्ती पर आधारित नहीं है बल्कि यह **आर्थिक शोषण** पर आधारित है। यह अतिरिक्त मूल्य की एक बेहद आरम्भिक परिभाषा मात्र है, जिस पर आगे हम विस्तार से विचार करेंगे। लेकिन अभी इतना समझना अनिवार्य है : *अतिरिक्त मूल्य और उसके विभिन्न रूपों में होने वाला विभाजन जैसे कि मुनाफ़ा, लगान, सूद आदि और कुछ नहीं है कि बल्कि प्रत्यक्ष उत्पादकों के श्रम के उत्पाद का वह हिस्सा है जिसे हमने ऊपर अतिरिक्त उत्पाद या सामाजिक अतिरिक्त उत्पाद कहा है।* यानी यह और कुछ नहीं बल्कि प्रत्यक्ष उत्पादकों के जीवन के उत्पादन व पुनरुत्पादन को सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक उत्पाद के ऊपर वह बेशी उत्पाद है, जिसके बूते आज का शासक वर्ग, यानी पूँजीपति वर्ग, उसकी सरकार, उसकी राज्यसत्ता, उसकी चाकरी करने वाले वर्ग और उनके ऐशो-आराम व ऐय्याशी चलती है। यह उत्पादक वर्गों के श्रम का वह हिस्सा है, जो कि वे मालिकों के लिए करते तो हैं, लेकिन जिसके बदले में उन्हें कोई मेहनताना या मज़दूरी नहीं मिलती है। यानी यह सामाजिक अतिरिक्त उत्पाद वह उत्पाद है जो उस श्रम से पैदा होता है, जो कि प्रत्यक्ष उत्पादक उत्पादन के साधन के मालिकों के लिए मुफ़्त में करता है।

इसलिए पूँजीपति वर्ग को प्राप्त होने वाला अतिरिक्त मूल्य और कुछ नहीं है बल्कि एक विशेष तरीक़े से, आर्थिक शोषण के तरीक़े से, हड़पा गया अतिरिक्त उत्पाद है जो कि आम तौर पर मुद्रा का रूप ग्रहण करता है, और जो मज़दूर वर्ग के उस अतिरिक्त श्रम की उपज है, जिसके बदले में उसे कुछ भी नहीं मिलता और जो श्रम वह मुफ़्त में, निशुल्क रूप में, पूँजीपति के लिए करता है। बस फ़र्क़ यह है कि किसी दास द्वारा या किसी सामन्ती निर्भर किसान द्वारा किये गये अतिरिक्त श्रम की तरह यह स्पष्ट तौर पर दिखलायी नहीं देता है। मसलन, किसान से ज़बरन उसकी उपज का एक हिस्सा ले लिया जाता था। या, दास या भूदास द्वारा तीन दिन ख़ुद को आबण्टित ज़मीन के टुकड़े पर काम किया जाना और चार दिन शासक वर्ग की ज़मीन पर अतिरिक्त श्रम करना। यहाँ अतिरिक्त श्रम और/या अतिरिक्त उत्पाद को साफ़ तौर पर दिक् और काल में अलग रूप में देखा जा सकता है। लेकिन पूँजीवाद में अतिरिक्त उत्पाद को हड़पे जाने की इस प्रक्रिया पर एक पर्दा गिर जाता है और वह छिप जाता है। अब इस शोषण को समझने के लिए हमें विश्लेषण की आवश्यकता होती है और यही विश्लेषण पहली बार कार्ल मार्क्स ने किया और दिखलाया कि पूँजीवादी शोषण का घृणित क्षुद्र रहस्य क्या है। मार्क्स द्वारा पूँजीपति वर्ग के मुनाफ़े के स्रोत को जिस सिद्धान्त द्वारा बेनक़ाब किया गया, उसी को हम अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त के रूप में जानते हैं। आगे हम अतिरिक्त मूल्य के इस सिद्धान्त को समझेंगे और जानेंगे कि पूँजीपति वर्ग हमें किस तरह से लूटता है, किस तरह से हमारा शोषण करता है और क्योंकि पहले की व्यवस्थाओं के विपरीत आज यह शोषण प्रत्यक्ष तौर पर सामने दिखता नहीं है, बल्कि उसे विश्लेषण के ज़रिए समझना पड़ता है। इस विश्लेषण की शुरुआत माल से होती है, क्योंकि यह माल ही है जिसमें पूँजीवादी समाज के समस्त अन्तरविरोध भ्रूण रूप में मौजूद हैं और जो रूप में पूँजीवादी समाज की समस्त सम्पदा का बहुलांश ग्रहण करता है। पूँजीवादी समाज में हर वस्तु, हर उत्पाद और हर सेवा माल का रूप ग्रहण करती जाती है, यहाँ तक कि स्वयं श्रमशक्ति, यानी एक उत्पादक की श्रम करने की क्षमता भी एक माल में तब्दील हो जाती है। इसीलिए पूँजीवादी समाज के वैज्ञानिक विश्लेषण की शुरुआत माल से ही हो सकती है।

मोदी के जुमलों की बारिश के बीच कैथल के मनरेगा मज़दूरों के हालात पर एक नज़र

15 अगस्त को जब पूरा देश आज़ादी की 75वीं वर्षगांठ मना रहा था। इस अवसर पर सुबह 8 बजे से पीएम मोदी लाल क़िले पर चढ़कर 70-80 मिनट का लम्बा-चौड़ा भाषण दे रहे थे। जिसमें पिछले आठ बार की ही तरह एक बार फिर बड़े-बड़े वायदे किये गये, जो हर बार की तरह पूरे नहीं होने वाले, साथ ही 'अमृत काल' का गुणगान किया गया। उसी वक़्त दूसरी ओर कैथल (हरियाणा) के फरल गाँव के मज़दूर सुबह 8 बजे मनरेगा के तहत काम करने के लिए गाँव से रवाना हुए थे। लेकिन मोदी जी के 'अमृत काल' की हक़ीक़त मनरेगा मज़दूरों से कोसों दूर है। पिछले दो दिनों से फरल गाँव के मनरेगा मज़दूर बेहद असुरक्षित और गन्दे हालातों में काम करने को मजबूर हैं। असल में मनरेगा विभाग और अधिकारी जानबूझकर मज़दूरों को सबक़ सिखाने के लिए इन हालातों में काम करा रहे हैं। क्योंकि फरल गाँव के मज़दूरों ने पिछले 5 महीने से काम नहीं मिलने पर प्रदर्शन कर यह काम हासिल किया था। मज़दूरों द्वारा जारी फ़ोटो में साफ़ दिख रहा है कि वे 2-3 फुट तक चलते पानी से लेकर गन्दे कीचड़-भरे नाले (ड्रेन) में काम कर रहे हैं। यहाँ न तो कोई सुरक्षा उपकरण हैं और न ही कोई अन्य सुविधा। ये सारी तस्वीरें भारत के 80 फ़ीसदी मज़दूरों की ज़िन्दगी और कार्य परिस्थितियों को साफ़ दर्शा रही हैं। मोदी सरकार की 'हर घर तिरंगा' जैसी हवाबाज़ी की लाख कोशिश के बावजूद, मज़दूरों-मेहनतकशों के बदतर हालात छिपने वाले नहीं है। कैथल के गाँव फरल के मनरेगा मज़दूरों की ये तस्वीरें तमाम खाते-पीते वर्ग की आज़ादी के जश्न में खलल डाल रही होंगी। लेकिन हमें देश की मेहतनतकश आबादी का सच ज़रूर बताना चाहिए।

मनरेगा मज़दूरों ने बताया कि पिछले दो दिनों से सभी मज़दूर जान-जोखिम में डालकर काम कर रहे हैं। कार्यस्थल पर लगातार साँप-बिच्छु निकलते रहते हैं, साथ ही चलते पानी और कीचड़ में भी दुर्घटना का ख़तरा बना रहता है। इस परिस्थिति की जानकारी यूनियन ने तुरन्त बीडीपीओ तथा डीसी, कैथल को दे दी है। यूनियन ने तय किया है कि अगर फरल गाँव के मनरेगा मज़दूरों को उचित न्याय नहीं मिलेगा तो व्यापक और जुझारू आन्दोलन का रास्ता अख़्तियार किया जायेगा।

उक्त घटना के दो दिन बाद क्रान्तिकारी मनरेगा मज़दूर यूनियन के बैनर तले फरल गाँव के मज़दूरों ने ढांड बीडीपीओ कार्यालय में बेहतर कार्य परिस्थितियों को लेकर प्रदर्शन किया। गाँव के मेट विकास ने मनरेगा विभाग को कार्यस्थल पर आ रही समस्याओं से अवगत कराया। उन्होंने आगे बताया कि फरल में मज़दूरों को लगभग पाँच माह बाद काम मिला था। जिसके तहत 13 से 20 अगस्त तक मज़दूरों को ड्रेन पर काम करना था। पिछले दो दिनों से फरल गाँव के मनरेगा मज़दूर बेहद असुरक्षित और गन्दे हालातों में काम करने को मजबूर हैं। गाँव के मेट विकास ने नहर विभाग के जेई व अधिकारियों को मौखिक तौर पर सूचना दी थी कि सभी मज़दूरों ने ऐसी कार्य परिस्थितियों में काम करने से मना कर दिया था। यूनियन के अजय ने बताया कि मज़दूरों को साल में मुश्किल से 25-30 दिन ही काम मिलता है। यही आँकड़े पूरे हरियाणा और देश स्तर पर लागू होते हैं। इसलिए हमारी माँग है कि मज़दूरों को सालभर काम दिया जाये, साथ ही बीडीपीओ कार्यालय की ज़िम्मेदारी बनाती है कि वो मज़दूरों की सुरक्षा की ज़िम्मेदारी लें। मज़दूरों ने आम सभा करके ये तय किया है कि हम इस काम का बाहिष्कार करेंगे। आगे मज़दूरों ने नये काम का आवदेन पत्र जमा कर दिया।

– बिगुल संवाददाता

ताइवान को लेकर अमेरिका व चीन के बीच तेज़ होती अन्तर-साम्राज्यवादी होड़

– पराग वर्मा

विश्व पूँजीवाद के अन्तरविरोध दुनिया के विभिन्न हिस्सों में तीखे रूप में प्रकट हो रहे हैं। अन्तर-साम्राज्यवादी होड़ के नतीजे के रूप में यूक्रेन में शुरू हुआ युद्ध अभी तक जारी है। इसी बीच 3 अगस्त 2022 को अमेरिकी संसद के हाउस ऑफ़ रिप्रेज़ेंटेटिव की स्पीकर नैंसी पेलोसी ने अपनी दक्षिण पूर्व एशिया की यात्रा के दौरान ताइवान की राजधानी ताइपेई का भी दौरा किया जिसके बाद से वैश्विक राजनीति में उथल-पुथल मच गयी। दरअसल चीन ताइवान को एतिहासिक तौर पर अपना हिस्सा मानता है और उसका देर-सबेर चीन के साथ विलय होना निश्चित मानता है। वैसे तो चीन का कहना है कि वह इस विलय को शान्तिपूर्ण तरीक़े से करना चाहता है, पर वह यह भी कहता है कि यदि ताक़त का इस्तेमाल भी करना पड़ा तो वह हिचकेगा नहीं। कोई भी देश यदि ताइवान की आज़ादी की बात का समर्थन करता है तो चीन उस पर तीखी प्रतिक्रिया देता है। चीन की चेतावनी के बावजूद पच्चीस सालों में पहली बार नैंसी पेलोसी के रूप में किसी अमरीकी शीर्ष पदाधिकारी ने ताइवान की यात्रा की है। नैंसी पेलोसी ने ताइवान को आश्वासन दिया कि उसके (बुर्जुआ)जनवादी राजनीतिक ढाँचे और आत्मरक्षा के अधिकार का अमेरिका पूर्ण समर्थन करता है। इसके जवाब में चीन ने तुरन्त प्रतिक्रिया देते हुए बयान जारी किया कि वो अमेरिका के इस क़दम को चीन की राष्ट्रीय सम्प्रभुता का गम्भीर उल्लंघन मानता है और इसे दोनों देशों के बीच पूर्वनिर्धारित 'वन चाइना' नीति के ख़िलाफ़ देखता है। चेतावनी की कार्रवाई के तौर पर चीन ने ताइवान जलडमरूमध्य के इलाक़े में तीन दिन तक सैनिक युद्धाभ्यास भी किया।

ताइवान की भूराजनीतिक स्थिति

ताइवान चीन की मुख्य भूमि के दक्षिण पूर्व तट से क़रीब 120 किलोमीटर दूर दक्षिण व पूर्वी चीन सागर के सन्धिबिन्दु पर स्थित एक द्वीप है। चीन के समुद्री तट से क़रीब होने के अतिरिक्त ताइवान का एक अन्य भूरणनीतिक महत्व यह भी है कि उसपर नियंत्रण के ज़रिए चीन के समुद्री व्यापार के सभी मार्गों पर नियंत्रण किया जा सकता है। शीत युद्ध के समय से ही जापान के दक्षिण से जो द्वीपों की श्रृंखलाएँ है, जिनमें ताइवान और फ़िलीपींस जैसे द्वीप हैं, उन्हें अमेरिका अपने प्रभाव क्षेत्र में लाने का प्रयास करता आया है। अमेरिका की साम्राज्यवादी विदेश नीति के अहम हिस्से के रूप में वह दुनिया के विभिन्न हिस्सों में सैन्य सहायता, आर्थिक व्यापारिक व तकनीकी मदद के बदले कई सहयोगी बनाता रहा है जो अन्ततः उसके साम्राज्यवादी हितों की रक्षा करते हैं। ताइवान भी अमेरिका का मित्र है जिसे अमेरिका उसकी क्षेत्रीय सुरक्षा का आश्वासन देता है और बदले में इण्डो-पेसिफ़िक क्षेत्र में चीन को नियंत्रित रखने के लिए ताइवान का इस्तेमाल करता है।

ताइवान व चीन के सम्बन्धों का उतार-चढ़ाव-भरा इतिहास

17वीं सदी से 19वीं सदी के बीच चीन के अधिकांश भूभाग पर किंग राजवंश का राज्य था जिसमें ताइवान का द्वीप भी शामिल था। 1895 में जापान ने ताइवान पर क़ब्ज़ा कर लिया और यह क़ब्ज़ा 50 सालों तक रहा। 1945 में दूसरे विश्वयुद्ध में जापान के हारने के बाद चीन ने फिर से ताइवान पर क़ब्ज़ा कर लिया। इसी समय चीन की मुख्यभूमि में माओ त्से-तुङ के नेतृत्व वाली कम्युनिस्ट पार्टी और राष्ट्रवादी पार्टी 'कुओमिंतांग' के बीच गृहयुद्ध छिड़ गया। 1949 में चीन की नवजनवादी क्रान्ति के पश्चात चीन की कम्युनिस्ट पार्टी ने चीन के सम्पूर्ण क्षेत्र में 'पीपल्स रिपब्लिक ऑफ़ चाइना' की स्थापना की घोषणा की। जबकि कुओमिंतांग का नेतृत्व चीन से भाग खड़ा हुआ और उसने ताइवान जाकर शरण ले ली और ख़ुद को चीन देश का प्रतिनिधि घोषित करते हुए देश का नाम 'रिपब्लिक ऑफ़ चाइना' रख दिया। वास्तव में यह ताइवान में कुओमिंतांग के नेतृत्व में एक निरंकुश सत्ता थी और उसका नेता च्यांग काई शेक 1975 में अपनी मृत्यु तक ताइवान के स्वघोषित रूप से राष्ट्रपति पद पर आसीन रहा। इस दौरान ताइवान में मार्शल लॉ लागू था और कम्युनिस्टों सहित हर प्रकार के विरोधियों का बर्बर दमन किया गया। च्यांग काई शेक की मृत्यु के बाद उसका बेटा च्यांग चिंग कुओ ताइवान का राष्ट्रपति बना। इस बीच ताइवान में हुए पूँजीवादी विकास के फलस्वरूप स्थानीय बुर्जुआ वर्ग भी विकसित हुआ जिसका प्रतिनिधित्व 1986 में गठित डेमोक्रेटिक प्रोग्रेसिव पार्टी (डीपीपी) कर रही थी जिसका नेता ली तेंग हुई ताइवान में पैदा हुआ था और जिसकी शिक्षा-दीक्षा अमेरिका में हुई थी। स्थानीय बुर्जुआ वर्ग और जनान्दोलनों के दबाव में चिंग कुओ को ताइवान की राजनीतिक व्यवस्था में कुछ सुधार करने पर मजबूर होना पड़ा। 1987 में ताइवान से मार्शल लॉ हटाया गया और वहाँ बुर्जुआ जनवाद की स्थापना की शुरुआत हुई। 1988 में कुओ की मृत्यु के बाद ली तेंग हुई ताइवान का राष्ट्रपति बना और 1990 के दशक में बुर्जुआ जनवादी सुधारों को आगे बढ़ाया गया। उसके बाद से अलग-अलग समय पर ताइवान में डीपीपी और कुओमिंतांग पार्टी का शासन रहा है। जहाँ कुओमिंतांग ताइवान का चीन से एकीकरण करने की पक्षधर है वहीं डीपीपी का झुकाव अमेरिका की ओर है।

1949 में च्यांग काई शेक द्वारा स्थापित ताइवान के 'रिपब्लिक ऑफ़ चाइना' को अमेरिका सहित कई पश्चिमी देशों ने चीन देश की एकमात्र वैध सरकार के रूप में मान्यता दी थी। लेकिन 1971 में संयुक्त राष्ट्र संघ ने ताइवान की मान्यता रद्द करके उसे 'पीपल्स रिपब्लिक ऑफ़ चाइना' के अंग के रूप में ही मान्यता दी। उसके बाद से ताइवान को अलग देश मानने वाले देशों की संख्या कम होती गयी और अब केवल 15 छोटे देश ही ऐसा मानते हैं। इतिहास और सांस्कृतिक समानता के मद्देनज़र चीन ताइवान को उसका अभिन्न अंग मानता है। मौजूदा चीन के बढ़ते आर्थिक और राजनीतिक प्रभुत्व के कारण अधिकांश देश चीन की इस 'वन चाइना' नीति के समर्थक हैं। 'वन चाइना' नीति पर सभी देशों को राज़ी करना चीनी विदेश नीति का महत्वपूर्ण हिस्सा है।

हालाँकि ताइवान को एक स्वतंत्र देश के रूप में मान्यता नहीं मिली है, फिर भी वह आज काफ़ी हद तक आज़ाद देश जैसी स्थिति बनाये हुए है। उसके पास अपनी फ़ौज है, बुर्जुआ जनवादी ढाँचा है, अपनी मुद्रा, पासपोर्ट, सशक्त राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था और अन्तरराष्ट्रीय व्यापार में भी उसकी विचारणीय हिस्सेदारी है। यह बात दीगर है कि बुर्जुआ वर्ग के विभिन्न धड़ों की क़रीबी चीन व अमेरिकी साम्राज्यवादियों के साथ होने से वह साम्राज्यवादी हस्तक्षेप का अखाड़ा भी बनता जा रहा है। नैंसी पेलोसी की ताइवान यात्रा में ताइवान की आत्मरक्षा के समर्थन में दिये बयान और फिर प्रतिक्रिया में चीन द्वारा किये हवाई सैन्य परीक्षण, समुद्री व्यापार में अवरोध और ताइवान से चीन में आयात होने वाले फल और मछली जैसे फ़ूड पर चीन द्वारा प्रतिबन्ध लगाया जाना, यह बताता है कि चीन और अमेरिका के बीच साम्राज्यवादी होड़ और तीखी हो रही है और जिसके ठोस कारण पूँजीवादी व्यवस्था के गहराते संकट में मौजूद हैं।

पूँजीवादी संकट के दौर में तीखी होती साम्राज्यवादी होड़

2008 के वैश्विक पूँजीवादी संकट के बाद पूँजीवाद अभी पूरी तरह से उबर नहीं पाया था कि कोरोना महामारी ने पूँजीवादी दुनिया को एक और झटका दे दिया। उसके बाद इस साल रूस द्वारा यूक्रेन पर किये गये हमले ने पूरे विश्व को और गहरी मन्दी और महँगाई की ओर ढकेल दिया है। मुनाफ़े की गिरती दर को रोकने के लिए दुनिया की तमाम कम्पनियाँ उत्पादन और वितरण के क्षेत्र में ऑटोमेशन और डिजिटलाइज़ेशन पर ज़ोर दे रही हैं। इस बीच विभिन्न साम्राज्यवादी देशों व धड़ों के बीच ज़्यादा से ज़्यादा संसाधनों, बाज़ारों व प्रौद्योगिकी पर क़ब्ज़ा करने की होड़ तीखी हुई है। सूचना प्रौद्योगिकी के मौजूदा दौर में कम्पनियाँ 5जी, आर्टिफ़िशियल इण्टेलिजेंस, फ़ास्ट स्पीड कम्प्यूटिंग, मशीन लर्निंग और क्लाउड कम्प्यूटिंग जैसी प्रौद्योगिकियों पर ज़ोर बढ़ा रही हैं। इन प्रौद्योगिकियों के लिए सबसे महत्वपूर्ण वस्तु है उच्च घनत्व के सेमीकण्डक्टर डिवाइस। आज विश्वभर में अमेरिका, चीन, जापान, कोरिया इत्यादि देशों के पास सेमीकण्डक्टर चिप बनाने की ऐसी सुविधाएँ मौजूद हैं जिनमें 14 नेनोमीटर तक की सूक्ष्म चिप बनायी जा सकती हैं। परन्तु 5जी टेक्नोलॉजी, आर्टीफ़िशियल इण्टेलिजेंस, क्लाउड इत्यादि के अत्याधुनिक इस्तेमाल में जिन चिप की ज़रूरत होती है वे 5-7 नेनोमीटर की उच्च घनत्व वाली चिप होती हैं। इस तरह की सूक्ष्म और उन्नत चिप बनाने की क्षमता पूरे विश्व में केवल ताइवान की कम्पनी टी.एस.एम.सी. और कोरिया की कम्पनी सैमसंग के पास है। टी.एस.एम.सी. आज विश्वभर में होने वाले चिप उत्पादन का 54% उत्पादन करती है। ताइवान की बाक़ी चिप निर्माता कम्पनियों का भी जोड़ दिया जाये तो ताइवान पूरे विश्व के चिप उत्पादन का 64 प्रतिशत उत्पादन करता है। यही नहीं, दुनिया की 92 प्रतिशत उन्नत और जटिल चिप का उत्पादन ताइवान में होता है। अमेरिका और चीन सेमीकण्डक्टर की डिज़ाइन कर सकते हैं, परन्तु उसके उत्पादन के लिए दोनों ही ताइवान पर निर्भर हैं। ताइवान की भी चिप उत्पादन के कच्चे माल के तौर पर इस्तेमाल होने वाली सिलिकॉन के लिए चीन पर, सॉफ़्टवेयर के लिए अमेरिका पर, चिप बनाने की आधुनिक मशीनों के लिए नीदरलैण्ड्स पर और केमिकल व स्पेयर्स के लिए अन्य देशों पर निर्भरता है। जहाँ एक ओर चीन के साथ ताइवान के मतभेद हैं वहीं पूँजीवादी मुनाफ़े और बाज़ार के फैलाव के फलस्वरूप ताइवान के कुल निर्यात का 42 प्रतिशत चीन को जाता है और ताइवान चीन से कुल निर्यात का 22 प्रतिशत लेता है। ताइवान का व्यापार अमेरिका की तुलना में चीन के साथ बहुत ज़्यादा है। अमेरिकी व चीनी साम्राज्यवादियों के बीच ताइवान में जो टकराहट दिखायी दे रही है उसका कारण भूरणनीतिक कारणों के अलावा सेमीकण्डक्टर को लेकर चल रही खींचतान भी है।

व्यापारिक व प्रौद्योगिक रूप से ताइवान पर निर्भरता के कारण सैन्य बल में कई गुना बड़ी ताक़त होने के बावजूद चीन ने अभी तक ताइवान पर बल का इस्तेमाल नहीं किया है। आमतौर पर ताइवान के मामले में अमेरिका भी यथास्थिति बरकरार रखने, द्वीप समूहों पर स्थित फ़ौज के आधार द्वारा चीन पर नज़र रखने और आर्थिक प्रतिबन्धों द्वारा चीन को बाज़ार की प्रतियोगिता में पछाड़ने की बातें करता आया है, परन्तु इस बार नैंसी पेलोसी ने अचानक ताइवान पहुँचकर ताइवान के साथ खड़े रहने का जो आह्वान किया है वह चीन को उकसाने की हरकत है। अमेरिका द्वारा ताइवान के मुद्दे को हवा देना अमेरिकी अर्थव्यवस्था में मन्दी व विश्व राजनीति में अमेरिकी साम्राज्यवादी वर्चस्व के ह्रास की परिस्थिति से अमेरिकी जनता का ध्यान भटकाने की भी एक कोशिश है। इसी प्रकार चीन के राष्ट्रपति शी जिन पिंग को भी ताइवान के मुद्दे से चीन के भीतर आर्थिक संकट व आवास संकट से लोगों का ध्यान भटकाने का मौक़ा मिल गया है।

ताइवान के मज़दूर वर्ग और उसका प्रतिनिधित्व करने वाली ताक़तों के लिए चीनी व अमेरिकी साम्राज्यवादियों की इस होड़ में किसी एक का पक्ष चुनने की बजाय सर्वहारा वर्ग की स्वायत्त राजनीति को विकसित करना आज के दौर का सबसे अहम कार्यभार है। इस प्रक्रिया में ताइवान के बुर्जुआ वर्ग के चीन की ओर झुकाव रखने वाले धड़े और अमेरिका की ओर झुकाव रखने वाले धड़े, इन दोनों का जनविरोधी चरित्र उजागर करना चाहिए। साथ ही चीन के सर्वहारा वर्ग के हितों की नुमाइन्दगी करने वाली ताक़तों के साथ एकजुटता स्थापित करते हुए चीन व ताइवान दोनों देशों में समाजवादी व्यवस्था के लिए संघर्ष की तैयारियों में जुट जाना चाहिए क्योंकि समाजवाद ही पूँजीवादी शोषण व उत्पीड़न के साथ ही साथ साम्राज्यवादी युद्धों से भी निजात दिला सकता है।

"...हम जनता का ध्यान इतिहास में बराबर दोहराये गये इस सबक की ओर दिलाना चाहते हैं कि ग़ुलामी और बेबसी से कराहती जनता को कुचलना आसान है, परन्तु विचार अमर होते हैं और दुनिया की कोई ताक़त उन्हें कुचल नहीं सकती। दुनिया में अनेक बड़े-बड़े साम्राज्य नष्ट हो गये, परन्तु जनसाधारण ने जिन विचारों से प्रेरित होकर इन्हें समाप्त किया वे आज भी जीवित हैं। बूरबों (फ्रांसीसी राजवंश) मिट गये, पर क्रान्तिकारी सीना ताने चल रहे हैं।"

– भगतसिंह

(केन्द्रीय असेम्बली में भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त द्वारा बम विस्फोट के बाद फेंके पर्चे से)

बिहार में सियासी उलटफेर कोई आश्चर्य की बात नहीं – 'तू नंगा तो तू नंगा, मौक़ा मिले तो सब चंगा' – यही है पूँजीवादी लोकतंत्र की असली हक़ीक़त

केवल बदला है लुटेरों का आपसी समीकरण, मज़दूर-मेहनतकश व आम जनता का शोषण पूर्ववत जारी है और यह फ़ासीवाद की निर्णायक हार भी नहीं

– आशीष

बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार ने भाजपा के साथ गठबन्धन तोड़कर जीतन राम मांझी की पार्टी 'हम' के साथ तथा लालू की पार्टी 'आरजेडी नीत महागठबन्धन' (आरजेडी, कांग्रेस, सीपीआई, सीपीआईएम और सीपीआई माले लिबरेशन) के साथ मिलकर नयी सरकार बनायी है। नयी सरकार के अस्तित्व में आने के बाद उदारपन्थी-वामपन्थी ख़ेमा अत्यधिक उत्साहित हो रहा है। कोई इस बदलाव को जनता के हित में एक ज़बर्दस्त बदलाव के रूप में व्याख्यायित कर रहा है तो कोई इसे फ़ासीवादी ताक़तों के ह्रास के रूप में! बिहार में भाजपा का सत्ता से बाहर हो जाना महज़ लुटेरों के बीच के आपसी समीकरणों का बदलाव ही है। पूँजीवादी व्यवस्था में किसी भी बुर्जुआ पार्टी या गठबन्धन की सरकार बने, सभी सरकारें पूँजीपति वर्ग की प्रबन्धन कमेटी की भूमिका निभाती हैं। पूँजीवादी व्यवस्था में निरन्तर गलाकाटू प्रतिस्पर्धा चलती रहती है। ख़ुद पूँजीपति वर्ग के भी विभिन्न धड़ों के बीच आपस में प्रतिस्पर्धा चलती रहती है कभी एक ख़ेमा हावी होता है तो कभी दूसरा तो कभी तीसरा कोई अन्य ख़ेमा। सभी बुर्जुआ राजनीतिक पार्टियाँ किसी न किसी धड़े का प्रतिनिधित्व करती हैं तथा सभी सरकारें आमतौर पर समस्त पूँजीपति वर्ग के दूरगामी हितों का प्रतिनिधित्व करती हैं। अभी बिहार में जो सियासी खींचतान हुआ इससे न तो जनता के किसी भी हिस्से के हालात में कोई बदलाव आयेगा और न ही इससे अपनेआप में फ़ासीवादी ताक़तों की किसी भी रूप में पराजय होने जा रही है! नयी सरकार बनने के बाद पिछले दिनों शिक्षक पात्रता परीक्षा में उत्तीर्ण आन्दोलनरत छात्रों के ऊपर जिस बर्बरता के साथ बिहार पुलिस ने लाठियों की बौछार की उससे वर्तमान सरकार की तथाकथित जनपक्षधरता खुलकर सामने आ गयी है। अभी भी छाती पीट-पीटकर 'संविधान बचाओ लोकतंत्र बचाओ', 'कमण्डल की राजनीति पर मण्डल की राजनीति की विजय', 'लोहिया-जेपी समाजवादी ख़ेमे की एकता' आदि जैसी तमाम बातें करने वाले कई लोग हैं, ऐसे लोगों की तमन्ना निश्चित ही पुनः निराशा के दलदल में डूब जायेगी!

सत्ता की महत्वाकांक्षा में मोदी-शाह की जोड़ी अलग-अलग राज्यों में करिश्मा करती रही है! चुनावी हार के बावजूद केन्द्रीय एजेंसियों, ईडी आदि का भय दिखाकर या पद-पैसे के प्रलोभन के ज़रिए करिश्माई ढंग से कई राज्यों में सरकार क़ायम करने में भाजपा सफल रही है। बिहार में यह करिश्मा नहीं हो सका जिसका दुख सत्ता चले जाने के बाद भाजपा नेताओं की छटपटाहट में खुलकर सामने दिखाई दे रहा है। बिहार में सरकार पलटने के बाद अब भाजपा को अचानक से नैतिकता, जनमत का अपमान, लोकतंत्र, धोखा, छल आदि शब्दों की याद आ रही है! अवसरवादिता के मामले में भी भाजपा को जदयू कड़ी टक्कर दे रही है। बुर्जुआ राजनीति के पटल पर गिरगिट से भी तेज़ रंग बदलने में माहिर जदयू नेता नीतीश कुमार का कभी कोई जोड़ नहीं है! इनके विरोधी इन्हें कभी कुर्सी कुमार तो कभी पल्टू राम की संज्ञा देते हैं। नीतीश कुमार ने कभी कहा था "मिट्टी में मिल जाऊँगा लेकिन दोबारा भाजपा के साथ नहीं जाऊँगा।" अभी हाल ही में नीतीश कुमार ने फिर से यह बात दुहरायी है और कहा है कि 2017 में भाजपा के साथ जाना उनकी मूर्खता थी। इतने ईमानदार नीतीश कुमार इसलिए बन बैठे हैं क्योंकि मोदी-शाह की जोड़ी उनका और उनके चुनावबाज़ दल का अस्तित्व ही समाप्त करने में लग गये थे। लेकिन सत्ता में बने रहने के लिए नीतीश कुमार ने किसी से हाथ मिलाने में संकोच नहीं किया। पहले भाजपा को छोड़कर राजद के साथ और फिर राजद को छोड़कर अवसर मिला फिर भाजपा से गले मिल लिया। अब फिर भाजपा की "प्रताड़ना" के कारण फिर से अपने धुर विरोधी से जा मिले। कुर्सी क़ायम रहे, कोई पतित बोले या पल्टीमार क्या फ़र्क़ पड़ता है! भाजपा के केन्द्रीय मंत्री अपने तत्कालीन सहयोगी जदयू के विधायकों को कथित तौर पर 6 करोड़ रूपये और मंत्री पद देने की बात कर रहे थे। यह बात जदयू को कैसे हज़म हो सकती थी। सत्ता और पूँजी की ताक़त के बावजूद बिहार में अकेले सरकार बनाने की भाजपा की मंशा विफल रही।

वर्तमान राजनीतिक नौटंकी का सबसे अप्रत्याशित नफ़ा लालू की पार्टी राजद को हुआ है। 'नीतीश कुमार के पेट में दाँत हैं', 'नीतीश कुमार पल्टू राम है' आदि जुमले का इस्तेमाल करने वाली पार्टी राजद के नेताओं ने सत्ता की सेज की ख़ातिर सारे पुराने गिले-शिकवों को भुला दिया है। लेकिन वे लोग इस बात को भूल रहे हैं कि जंगलराज के लिए कुख्यात इस पार्टी के शासनकाल को भी जनता ने देखा है। बिहार में जो सियासी उठापटक हुआ उसका एक महत्वपूर्ण कारक पूँजीपति वर्ग के बीच की आपसी प्रतिस्पर्धा है। भाजपा जहाँ देश के बड़े पूँजीपति वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है वहीं बिहार में जदयू और राजद स्थानीय धनी किसान-कुलकों, बड़े ठेकेदार बिल्डर व व्यापारी और मँझोले पूँजीपति वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाली क्षेत्रीय पार्टियाँ हैं। वहीं कांग्रेस भी, जो कभी देश में सबसे शक्तिशाली पूँजीवादी पार्टी थी और एक दौर में जिसे भारतीय बुर्जुआ वर्ग के व्यापक हिस्से का सहयोग और समर्थन प्राप्त था, बिहार के वर्तमान राजनीतिक परिदृश्य में सत्ता की भागीदार बनकर एक नयी संजीवनी तलाशने के प्रयास में जुटी हुई है।

इस पूरे प्रकरण में तथाकथित वामपन्थी पार्टियों की हालत थाली के बैंगन जैसी हो गयी है। यह पार्टियाँ बुर्जुआ राज्य के ही अंग के रूप में काम करती हैं। हम सभी जानते हैं कि भाकपा-माकपा के वाम मोर्चे की सरकारों ने किसी भी पूँजीवादी पार्टी के ही समान तत्परता के साथ पूँजीपति वर्ग की सेवा की और अधिक बर्बरता के साथ जनता के आन्दोलनों का दमन किया। बंगाल में नन्दीग्राम-सिंगूर की घटना इनके कुकर्मों की प्रातिनिधिक उदाहरण है। बिहार में इनके नेता अजीत सरकार की हत्या के मामले में भूतपूर्व राजद नेता पप्पू यादव की भूमिका सन्दिग्ध थी। सत्ता की मलाई के लिए उसी राजद के साथ गठबन्धन क़ायम करने में सीपीआईएम के नेताओं ने पलभर की भी देरी नहीं की। देश स्तर पर आज मज़दूर आन्दोलन से ग़द्दारी तथा मालिकों-सरकारों के साथ गलबहियाँ करने में माकपा की ट्रेड यूनियन फ़ेडरेशन सीटू की भूमिका बेहद अहम है। तथाकथित वामपन्थी पार्टियों में से बिहार में सबसे ज़्यादा सीटें हासिल करने वाली भाकपा (माले) लिबरेशन सबसे घाघ और घुटी क़िस्म की संशोधनवादी पार्टी है। यह पार्टी हरी घास में हरे साँप के समान है। अपने निष्क्रिय उग्रपरिवर्तनवादी तेवर और लफ़्फ़ाज़ी के कारण इनका अवसरवादी और संशोधनवादी चरित्र समझ पाने में अक्सर कई लोग चकमा खा जाते हैं। अतीत में अपने नेता चन्दू की हत्या को लेकर राजद के साथ आर-पार की लड़ाई लड़ने की बात करने वाली यह पार्टी सत्ता में हिस्सेदारी के लिए लालू की पार्टी की पिछलग्गू बन गयी थी और अपने इस घिनौने अवसरवाद को छुपाने के लिए यह इस गठबन्धन को यह कह कर सही ठहराते हैं कि आज बुर्जुआ संविधान और लोकतंत्र को बचाने के लिए और फ़ासीवादी ताक़तों को हराने के लिए यह क़दम ज़रूरी था! और आज जब नीतीश कुमार के साथ राजद के गठबन्धन की सरकार बन चुकी है तो यह इसे भी फ़ासीवाद की पराजय के रूप में स्थापित कर रहे हैं और इसका सचिव दीपांकर भट्टाचार्य नीतीश कुमार के दरवाज़े पर गुलदस्ता लेकर खड़ा है! एक तरफ़ लिबरेशन के सचिव दीपांकर भट्टाचार्य यह कहते हैं कि 'जनता को लामबन्द करना उनकी पहली प्राथमिकता है और पार्टी अभी कैबिनेट में शामिल नहीं होगी और दूसरी तरफ़ वे सरकार में हिस्सेदारी करने के रास्ते भी यह कह कर खुले रखते हैं कि 'फ़िलहाल वे कैबिनेट में शामिल नहीं होंगे लेकिन शामिल होने में कोई वैचारिक बाधा नहीं है व भविष्य में हम इसकी समीक्षा कर सकते हैं!' वाह! यह है इनका असली रंग जो कि यह अपने नक़ली क्रान्तिकारी जुमलों के पीछे छुपा लेते हैं! भाकपा माले (लिबरेशन) की विचारधारात्मक बेईमानी की पोल तो काफ़ी पहले ही खुल चुकी थी। अभी हाल ही में इस पार्टी की केन्द्रीय कमेटी सदस्या कविता कृष्णन के बयान से साफ़ तौर पर यह ज़ाहिर हो गया कि ये लोग वैचारिक ग़द्दारी की गटरगंगा में आकण्ठ डूब चुके हैं। इस नेत्री ने मज़दूरों के महान नेता स्टालिन को तानाशाह बताते हुए सोवियत समाजवाद जैसे महान प्रयोग पर बुर्जुआ कुत्साप्रचारक की शैली में घिनौना हमला किया। अब यह माले लिबरेशन को छोड़कर अस्मितावादी उदार बुर्जुआ नारीवादी चिन्तक बनने की दिशा में आगे बढ़कर भाकपा माले (लिबरेशन) को भी ठेंगा दिखा गयी हैं।

बिहार के राजनीतिक खींचतान से फ़ासीवादी शक्तियों का कोई गुणात्मक ह्रास नहीं होने जा रहा है। चुनावों में हार से या सत्ता से बाहर हो जाने से फ़ासिस्टों के ऊपर ज़्यादा से ज़्यादा तात्कालिक प्रभाव ही पड़ता है। फ़ासीवाद को चुनावों के ज़रिए नहीं परास्त किया जा सकता है। फ़ासीवाद टुटपुँजिया वर्ग का एक ऐसा प्रतिक्रियावादी आन्दोलन होता है, जो नंगे रूप में सेवा यह बड़े पूँजीपति वर्ग की करता है। भाजपा चाहे सत्ता में रहे या न रहे, यह प्रतिक्रियावादी फ़ासीवादी आन्दोलन ज़मीनी स्तर पर मौजूद है। इसके लिए मेहनतकश जनता की चट्टानी एकजुटता स्थापित कर इन्हें सड़कों पर जवाब देना होगा, इनके ख़िलाफ़ क्रान्तिकारी जनान्दोलनों को खड़ा करना होगा, संगठित होकर फ़ासीवाद-विरोधी प्रचार आन्दोलनों को जनता के बीच ले जाना होगा, इनकी जड़ों पर सीधा प्रहार करना होगा। लेकिन इस क्षेत्र में ये नक़ली लाल झण्डे वाली पार्टियाँ कुछ भी नहीं करतीं और न ही कुछ कर सकती हैं। ये बस अपनी अवसरवादिता छुपाने के लिए फ़ासीवाद को बहाना बनाकर गठबन्धन सरकार का समर्थन कर रही हैं!

विडम्बना तो यह है कि क्रान्तिकारी वाम शिविर में भी ऐसे लोग हैं जो यह मानते हैं कि यदि भाजपा को चुनाव में सत्ता से हटा दिया तो फ़ासीवाद का ख़तरा टल जायेगा। ऐसा होना सम्भव नहीं है। हाँ, यह ज़रूर है कि इन चुनावों को ऐसे मंच के तौर पर प्रयोग किया जाये, जहाँ प्रतिक्रियावादी फ़ासीवादी शक्तियों की वास्तविकता को जनता के समक्ष नंगा किया जाये। लेकिन यह भी तभी सम्भव है, जब क्रान्तिकारी शक्तियाँ अपने बल पर चुनाव में मेहनतकश जनता के स्वतंत्र क्रान्तिकारी पक्ष का प्रतिनिधित्व करते हुए रणकौशलात्मक भागीदारी करें न कि किसी खुले तौर पर फ़ासीवादी पूँजीवादी या अन्य पूँजीवादी दल का पिछलग्गू बनकर या उससे मोर्चा बनाकर।

"...ज़रूरत है निरन्तर संघर्ष करने, कष्ट सहने और कुर्बानी भरा जीवन बिताने की। अपना व्यक्तिवाद पहले ख़त्म करो। व्यक्तिगत सुख के सपने उतारकर एक ओर रख दो और फिर काम शुरू करो। इंच-इंच कर आप आगे बढ़ेंगे। इसके लिए हिम्मत, दृढ़ता और बहुत मज़बूत इरादे की ज़रूरत है। कितने ही भारी कष्ट-कठिनाइयाँ क्यों न हों, आपकी हिम्मत न काँपे। कोई भी पराजय या धोखा आपका दिल न तोड़ सके। कितने भी कष्ट क्यों न आयें, आपका क्रान्तिकारी जोश ठण्डा न पड़े। कष्ट सहने और कुर्बानी करने के सिद्धान्त से आप सफलता हासिल करेंगे और ये व्यक्तिगत सफलताएँ क्रान्ति की अमूल्य सम्पत्ति होगी।"

– भगतसिंह

(19 अक्टूबर 1929 को पंजाब छात्र संघ, लाहौर के दूसरे अधिवेशन को भेजे गये सन्देश में)

भगतसिंह की बात सुनो नयी क्रान्ति की राह चुनो

क्रान्ति से हमारा अभिप्राय है — अन्याय पर आधारित मौजूदा समाज-व्यवस्था में आमूल परिवर्तन।

समाज का प्रमुख अंग होते हुए भी आज मज़दूरों को उनके प्राथमिक अधिकार से वंचित रखा जा रहा है और उनकी गाढ़ी कमाई का सारा धन शोषक पूँजीपति हड़प जाते हैं। दूसरों के अन्नदाता किसान आज अपने परिवार सहित दाने-दाने के लिए मुहताज हैं। दुनिया भर के बाज़ारों को कपड़ा मुहैया करने वाला बुनकर अपने और अपने बच्चों के तन ढँकने-भर को भी कपड़ा नहीं पा रहा है। सुन्दर महलों का निर्माण करने वाले राजगीर, लोहार तथा बढ़ई स्वयं गन्दे बाड़ों में रहकर ही अपनी जीवन-लीला समाप्त कर जाते हैं। इसके विपरीत समाज के जोंक शोषक पूँजीपति ज़रा-ज़रा-सी बातों के लिए लाखों का वारा-न्यारा कर देते हैं।

यह भयानक असमानता और ज़बरदस्ती लादा गया भेदभाव दुनिया को एक बहुत बड़ी उथल-पुथल की ओर लिये जा रहा है। यह स्थिति ज़्यादा दिनों तक क़ायम नहीं रह सकती। स्पष्ट है कि आज का धनिक समाज एक भयानक ज्वालामुखी के दहाने पर बैठकर रंगरलियाँ मना रहा है और शोषकों के मासूम बच्चे तथा करोड़ों शोषित लोग एक भयानक खड्ड की कगार पर चल रहे हैं।

... ...

सभ्यता का यह प्रासाद यदि समय रहते सँभाला न गया तो शीघ्र ही चरमराकर बैठ जायेगा। देश को एक आमूल परिवर्तन की आवश्यकता है। और जो लोग इस बात को महसूस करते हैं उनका कर्तव्य है कि साम्यवादी सिद्धान्तों पर समाज का पुनर्निर्माण करें। जब तक यह नहीं किया जाता और मनुष्य द्वारा मनुष्य का तथा एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्र का शोषण, जिसे साम्राज्यवाद कहते हैं, समाप्त नहीं कर दिया जाता तब तक मानवता को उसके क्लेशों से छुटकारा मिलना असम्भव है, और तब तक युद्धों को समाप्त कर विश्व-शान्ति के युग का प्रादुर्भाव करने की सारी बातें महज ढोंग के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हैं। क्रान्ति से हमारा मतलब अन्ततोगत्वा एक ऐसी समाज-व्यवस्था की स्थापना से है जो इस प्रकार के संकटों से बरी होगी और जिसमें सर्वहारा वर्ग का आधिपत्य सर्वमान्य होगा। और जिसके फलस्वरूप स्थापित होने वाला विश्व-संघ पीड़ित मानवता को पूँजीवाद के बन्धनों से और साम्राज्यवादी युद्ध की तबाही से छुटकारा दिलाने में समर्थ हो सकेगा।

... ...

क्रान्ति के इस आदर्श की पूर्ति के लिए एक भयंकर युद्ध का छिड़ना अनिवार्य है। सभी बाधाओं को रौंदकर आगे बढ़ते हुए उस युद्ध के फलस्वरूप सर्वहारा वर्ग के अधिनायकतन्त्र की स्थापना होगी। यह अधिनायकतन्त्र क्रान्ति के आदर्शों की पूर्ति के लिए मार्ग प्रशस्त करेगा। क्रान्ति मानवजाति का जन्मजात अधिकार है जिसका अपहरण नहीं किया जा सकता। स्वतन्त्रता प्रत्येक मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है। श्रमिक वर्ग ही समाज का वास्तविक पोषक है, जनता की सर्वोपरि सत्ता की स्थापना श्रमिक वर्ग का अन्तिम लक्ष्य है। इन आदर्शों के लिए और इस विश्वास के लिए हमें जो भी दण्ड दिया जायेगा, हम उसका सहर्ष स्वागत करेंगे। क्रान्ति की इस पूजा-वेदी पर हम अपना यौवन नैवेद्य के रूप में लाये हैं, क्योंकि ऐसे महान आदर्श के लिए बड़े से बड़ा त्याग भी कम है। हम सन्तुष्ट हैं और क्रान्ति के आगमन की उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा कर रहे हैं। इन्क़लाब ज़िन्दाबाद!

('बम काण्ड पर सेशन कोर्ट में बयान' से)

मैंने कहा है कि वर्तमान आन्दोलन किसी न किसी समझौते या पूर्ण असफलता में समाप्त होगा।

मैंने यह इसलिए कहा है क्योंकि मेरी राय में इस समय वास्तविक क्रान्तिकारी ताक़तें मैदान में नहीं हैं। यह संघर्ष मध्यवर्गीय दुकानदारों और चन्द पूँजीपतियों के बलबूते किया जा रहा है। यह दोनों वर्ग, विशेषतः पूँजीपति, अपनी सम्पत्ति या मिल्कि

यत ख़तरे में डालने की जुर्रत नहीं कर सकते। वास्तविक क्रान्तिकारी सेनाएँ तो गाँवों और कारख़ानों में हैं — किसान और मज़दूर। लेकिन हमारे 'बुर्जुआ' नेताओं में उन्हें साथ लेने की हिम्मत नहीं है, न ही वे ऐसी हिम्मत कर सकते हैं। ये सोये हुए सिंह यदि एक बार गहरी नींद से जग गये तो वे हमारे नेताओं की लक्ष्य-पूर्ति के बाद ही रुकने वाले नहीं हैं।

...

क्रान्ति से हमारा क्या आशय है, यह स्पष्ट है। इस शताब्दी में इसका सिर्फ़ एक ही अर्थ हो सकता है — जनता के लिए जनता का राजनीतिक शक्ति हासिल करना। वास्तव में यही है 'क्रान्ति', बाक़ी सभी विद्रोह तो सिर्फ़ मालिकों के परिवर्तन द्वारा पूँजीवादी सड़ान्ध को ही आगे बढ़ाते हैं। किसी भी हद तक लोगों से या उनके उद्देश्यों से जतायी हमदर्दी जनता से वास्तविकता नहीं छिपा सकती, लोग छल को पहचानते हैं। भारत में हम भारतीय श्रमिक के शासन से कम कुछ नहीं चाहते। भारतीय श्रमिकों को — भारत में साम्राज्यवादियों और उनके मददगार हटाकर जो कि उसी आर्थिक व्यवस्था के पैरोकार हैं, जिसकी जड़ें शोषण पर आधारित हैं — आगे आना है। हम गोरी बुराई की जगह काली बुराई को लाकर कष्ट नहीं उठाना चाहते। बुराइयाँ, एक स्वार्थी समूह की तरह, एक-दूसरे का स्थान लेने के लिए तैयार हैं।

('क्रान्तिकारी कार्यक्रम का मसविदा' से)

योगी के रामराज्य में इलाज बिना मरते मेहनतकश

– लालचन्द्र

उत्तर प्रदेश की योगी सरकार हर ज़िले में मेडिकल कॉलेज खोलने जैसे बड़े-बड़े दावे कर रही है लेकिन वहाँ स्वास्थ्य सुविधाओं की हालत इतनी ख़राब है कि ग़रीब आदमी बीमारी की तकलीफ़ से मुक्ति पाने के लिए मौत चुनने पर मजबूर हो जाये। बात सुनने में भयानक लगेगी लेकिन योगी के "रामराज्य" का सच यही है।

इसी महीने फ़तेहपुर ज़िले के पंकज ने ज़हर खाकर अपनी जान दे दी। उसके गुर्दे में पथरी थी जिसका सही इलाज न होने से दर्द बढ़ता जा रहा था। पथरी का इलाज या ज़्यादा बढ़ जाने पर ऑपरेशन करके पथरी निकाल देना आज एक सामान्य बात है, हर शहर में दर्जनों डॉक्टर और अस्पताल हैं इसके लिए। लेकिन वे सबके लिए नहीं हैं। पंकज एक ग़रीब मज़दूर था। देश के संविधान, जिसकी सभी नेता क़समें खाते हैं, में लिखा है कि हर नागरिक को समान अधिकार मिले हैं। हर नागरिक का जीने का अधिकार एक मौलिक अधिकार है। लेकिन ग़रीब और मज़दूर अपने अनुभव से जानते हैं कि ये बातें सिर्फ़ किताबों और भाषणों में अच्छी लगती हैं।

सरकारी अस्पताल के चक्कर लगा-लगाकर और महीनों बाद की तारीख़ें ले-लेकर पंकज थक गया था। प्राइवेट अस्पताल में जाने की वह सोच भी नहीं सकता था। अपनी मेहनत के सिवा उसके पास बेचने को भी कुछ नहीं था। ऑपरेशन के लिए क़र्ज़ लिया पर दर्द इतना ज़्यादा था कि मज़दूरी भी नहीं कर सकता था। सारे पैसे घर बैठे दवाओं में ही खप गये। क़र्ज़े का बोझ ऊपर से आ गया। पिता से दर्द की दवा के लिए पैसे लिये और उससे ज़हर खाकर दर्द से हमेशा के लिए मुक्ति पा ली।

यह किसी एक मज़दूर की कहानी नहीं है। हर ज़िले में ऐसी दर्दभरी कहानियाँ मिल जायेंगी। जो ख़ुद अपनी जान नहीं लेते वे तकलीफ़ें सह-सहकर किसी तरह जीते हैं और फिर किसी सरकारी अस्पताल के फ़र्श पर या अपनी झोपड़ी में चुपचाप मर जाते हैं।

तमाम सरकारी दावों और सैकड़ों करोड़ ख़र्च करके किये गये प्रचार के विपरीत उत्तर प्रदेश में आम लोगों को उपलब्ध स्वास्थ्य व्यवस्था बेहद ख़स्ताहाल है। सरकारी अस्पतालों में डॉक्टरों से लेकर स्टाफ़ तक की भारी कमी है। उत्तर प्रदेश के सबसे बड़े मेडिकल कॉलेज, राजधानी लखनऊ में स्थित केजीएमयू में तीन-चार साल पहले एक विभाग बन्द करने की नौबत आ गयी थी क्योंकि उस विभाग के सभी डॉक्टर प्राइवेट अस्पतालों में चले गये। आये दिन मरीज़ों व तीमारदारों से अभद्रता, समय पर इलाज न मिलने से होने वाली मौतें, इलाज के दौरान जाँच के नाम पर खुलेआम लूट, सरकारी अस्पतालों में प्राइवेट अस्पतालों के दलालों की धमाचौकड़ी जैसी बातें आम हो चुकी हैं। सरकारी अस्पतालों की हालत यह है कि एम्बुलेंस नहीं मिलने की वजह से कभी कोई पिता अपने बच्चे के शव को कन्धे पर लादकर ले जाता है तो कभी कोई पति अपनी पत्नी के शव को साइकिल पर ले जाने को मजबूर होता है। कहीं सड़क इतनी ख़राब है कि एम्बुलेंस उसमें फँस जाती है और गर्भवती महिला का उसी में प्रसव हो जाता है।

पिछले दिनों प्रदेश के उपमुख्यमंत्री और स्वास्थ्य मंत्री ब्रजेश पाठक एक सरकारी दवा गोदाम के निरीक्षण के लिए पहुँचे तो योगी सरकार के स्वास्थ्य पर किये जा रहे बड़े-बड़े दावों की पोल अचानक खुल गयी। गोदाम में 16.40 करोड़ रुपये की एक्सपायर हो चुकी दवाओं का स्टॉक पाया गया, जिन्हें समय पर सरकारी अस्पतालों में भेजा ही नहीं गया था। ज़िम्मेदारों पर कोई कार्रवाई हुई, ऐसा सुनने में नहीं आया। दरअसल दवाएँ इसलिए नहीं भेजी गयी थीं ताकि अस्पताल में दवा न होने के कारण बाहर के मेडिकल स्टोरों पर बिकने वाली महँगी ब्राण्डेड दवाओं का धन्धा चमकता रहे। ऐसे घोटाले हर शहर में चलते रहते हैं।

"सतह से शिखर तक अन्त्योदय" की लफ़्फ़ाज़ी कर रही भाजपा सरकार "एक ज़िला–एक मेडिकल कॉलेज" का शिगूफ़ा छोड़ रही है, लेकिन नीयत का खोट यह है कि इस योजना के तहत बन रहे मेडिकल कॉलेज (पब्लिक-प्राइवेट पार्टनरशिप) पीपीपी मॉडल पर बनेंगे। इसका सीधा मतलब है कि संसाधन और बुनियादी ढाँचा जनता की गाढ़ी कमाई से खड़ा होगा और मुनाफ़ा बड़े-बड़े पूँजीपतियों का। ज़ाहिरा तौर पर, स्वास्थ्य का यह ढाँचा आम जनता के लिए सस्ता-सुलभ इलाज मुहैया करने का नहीं बल्कि स्वास्थ्य के क्षेत्र में भी पूँजी की घुसपैठ बढ़ाने का एक ज़रिया है। आम ग़रीब मेहनतकश इन महँगे प्राइवेट अस्पतालों में घुस भी नहीं सकते, इलाज तो दूर की बात है।

पहले के बने हुए सरकारी अस्पतालों की सूरत भी अब जनकल्याणकारी नहीं रह गयी। यूपी के लखनऊ स्थित लोहिया अस्पताल में एकल खिड़की पॉलिसी लागू कर इलाज मँहगा कर दिया गया है। अब एक रुपये का पर्चा सौ रुपये में बनेगा। दवाओं और बेड के दाम बढ़ा दिये गये हैं, जाँच पर भी अतिरिक्त शुल्क भरना पड़ेगा। बीएचयू के सर सुन्दरलाल अस्पताल में भी यही हुआ है। ये दोनों अस्पताल ही यूपी के बड़े अस्पताल हैं जिनमें ग़रीब लोग तक अपना इलाज करवाने दूर-दूर से आते हैं, उनका क्या होगा, इसकी फ़िक्र करना इसके ज़िम्मेदारों को ज़रूरी नहीं लगता। जून 2019 में नीति आयोग ने अपनी एक रिपोर्ट में दिखाया कि उत्तर प्रदेश स्वास्थ्य मामले में दूसरे 21 बड़े राज्यों की सूची में सबसे निचले स्थान पर है। राज्य की ख़राब स्थिति का अन्दाज़ा इस बात से लगाया जा सकता है कि वर्ष 2018 में यूपी का कम्पोज़िट इण्डेक्स स्कोर 33.69 था जो वर्ष 2019 में 5.28 अंक घटकर 28.61 रह गया था। संसद में पूछे गये एक सवाल के जवाब में इन्हीं के ही स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्री डॉ. मनसुख माँडलिया ने बताया कि प्रदेश में 59 नहीं बल्कि 35 मेडिकल कॉलेज हैं, और इन कॉलेजों में भी स्टाफ़ पूरा नहीं है। वहीं, एक पत्रकार दीपक लावनिया की आरटीआई रिपोर्ट के अनुसार उत्तर प्रदेश के मेडिकल कॉलेजों में शिक्षकों और डॉक्टरों के 28.52 प्रतिशत पद ख़ाली पड़े हैं। 26 प्रतिशत डॉक्टरों की नियुक्ति पक्की नहीं है बल्कि एक अनुबन्ध के आधार पर है। राज्य में मेडिकल कॉलेजो में शिक्षकों और डॉक्टरों के कुल स्वीकृत पदों की संख्या 2,791 है, जिसमें से 796 ख़ाली हैं और 727 ठेके पर हैं। क्लर्कों के 477 पदों में से 277 पर ही नियुक्ति हुई है। नॉनटेक्निकल व क्लर्क के कार्य हेतु 30 पदों पर नियुक्ति आउटसोर्सिंग के ज़रिए हुई है। टेक्निकल-नॉनटेक्निकल, क्लर्क, स्टेनोग्राफ़र आदि ग्रुप सी के 56.7 प्रतिशत यानी आधे से ज़्यादा पद ख़ाली पड़े हैं। मुख्यमंत्री आदित्यनाथ के गृहजनपद गोरखपुर व रायबरेली में एम्स के हालात भी ख़राब हैं। यहाँ पर भी शिक्षकों के आधे से ज़्यादा पद ख़ाली पड़े हैं।

उपरोक्त हालात यह दिखाने के लिए काफ़ी हैं कि उत्तर प्रदेश की भाजपा सरकार स्वास्थ्य ढाँचे को मज़बूत करने के चाहे जितने भी दावे कर ले पर वह आम जनता को सस्ती व सुलभ स्वास्थ्य सुविधाएँ मुहैया कराने में फिसड्डी साबित हुई है। क्योंकि उसका पूरा ज़ोर स्वास्थ्य क्षेत्र में भी निजीकरण को बढ़ावा देने का है।

डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2020-2022
प्रेषण डाकघर : आर.एम.एस, चारबाग़, लखनऊ
प्रेषण तिथि : दिनांक 5, प्रत्येक माह

बीते साल क़र्ज़ों की माफ़ी के साथ पूँजीपति हुए मालामाल!

– भारत

साल 2021 को याद कीजिए। कोरोना का प्रकोप अपने चरम पर था और सरकार की क्रूरता ने इसे दोगुना घातक बना दिया। लाखों लोगों ने इस कारण अपनी जान गवायी। ऑक्सीजन, बेड, दवाइयों के लिए हाहाकार मचा हुआ था। श्मशानों के आगे लाशों की क़तारें लगी हुई थीं। ये तो था देश की आम अवाम का हाल। मगर दूसरी तरफ़, 2021 में कोरोना महामारी के दौरान भी बड़े पूँजीपतियों की सम्पत्ति में 35 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई। अकेले गौतम अडानी की सम्पत्ति में पिछले साल 49 बिलियन डॉलर (यानी लगभग 4 लाख करोड़ रुपये) का इज़ाफ़ा हुआ है। इसी दौरान इनकी वफ़ादार मोदी सरकार जनता को मरता छोड़ इन सेठों का मुनाफ़ा बढ़ाने में जी जान से लगी हुई थी और अपने आक़ाओं के क़र्ज़ माफ़ कर रही थी।

आरटीआई से मिली जानकारी के अनुसार केवल कोरोना के 15 महीनों में पूँजीपतियों का 2,45,456 करोड़ रुपये का क़र्ज़ माफ़ किया गया। इसी रिपोर्ट में यह भी पता चला कि मोदी सरकार ने पिछले 7 सालों में क़रीब 11 लाख करोड़ रुपये के क़र्ज़ माफ़ किये हैं। रिज़र्व बैंक के 2015 से लेकर 30 जून 2021 के आँकड़े देखें तो 11 लाख 19 हज़ार करोड़ का क़र्ज़ बट्टे खाते में डाला गया, जबकि रिकवरी केवल 1 लाख करोड़ की है। यानी 10 लाख करोड़ का कोई अता पता नहीं। इसमें सबसे ज़्यादा भागीदारी सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों की रही है, जहाँ से लगभग साढ़े आठ लाख करोड़ का लोन माफ़ हुआ है। जब हमारे लोग ऑक्सीजन, बेड, दवाइयों की कमी से मर रहे थे, तब इस मोदी सरकार के लिए प्राथमिकता पूँजीपतियों के क़र्ज़ माफ़ करना था। ऐसा नहीं है कि मोदी सरकार पहली सरकार है जो पूँजीपतियों के क़र्ज़ माफ़ कर रही है, यह प्रथा आज़ादी के बाद से ही चालू है। बस मोदी सरकार ने इसे विकास की नयी ऊँचाइयों पर पहुँचा दिया है। यूपीए सरकार ने 2004 से 2014 तक 2.22 लाख करोड़ रुपये के क़र्ज़ माफ़ किये थे। यानी एक ओर जहाँ समूची पूँजीवादी व्यवस्था आर्थिक संकट से ग्रस्त थी, पूँजीपति वर्ग मुनाफ़े की गिरती दर के संकट से बिलबिला रहा था, वहीं फ़ासीवादी मोदी सरकार ने पूँजीपति वर्ग की मुनाफ़े की अन्धी हवस के कारण ही पैदा हुए संकट की क़ीमत आम मेहनतकश जनता से वसूली और पूँजीपति वर्ग का क़र्ज़ माफ़ किया और राजकीय घाटे को कम करने के लिए आम लोगों पर अप्रत्यक्ष करों का बोझ बढ़ा दिया।

अब ज़रा अपनी ज़िन्दगी पर निगाह डालिए। आज महँगाई में हुई बेतहाशा वृद्धि हमारी ज़िन्दगी पर क़हर बनकर टूटी है। महँगाई का हाल ये है कि थोक महँगाई दर मई 2022 में 15.08 प्रतिशत पहुँच चुकी थी और खुदरा महँगाई दर इसी दौर में 7.8 प्रतिशत पहुँच चुकी थी। बढ़ते थोक व खुदरा क़ीमत सूचकांक का नतीजा यह है कि मई 2021 से मई 2022 के बीच ही आटे की क़ीमत में 13 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई है। दूध रु. 53-54/लीटर व वनस्पति तेल औसतन रु. 200/लीटर का आँकड़ा पार कर रहे हैं। घरेलू रसोई गैस की क़ीमतों में 76 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी की गयी है और वह क़रीब रु.1050 प्रति सिलेण्डर की दर पर बिक रहा है। कॉमर्शियल रसोई गैस की क़ीमतों में 126 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी की गयी है जो कि अब लगभग रु. 2400 पर बिक रहा है। ज़िन्दा रहने के लिए बुनियादी वस्तुओं को ख़रीदने के लिए भी ये सरकार हम पर टैक्स लगा रही है।

मोदी सरकार के एक और नये फ़रमान के मुताबिक़ अब मछली, दही, पनीर, लस्सी, शहद, सूखा मखाना, सूखा सोयाबीन, मटर जैसे उत्पाद, गेहूँ तथा अन्य अनाज पर अब पाँच प्रतिशत जीएसटी लगेगा। इसके अलावा नारियल पानी, फुटवेयर के कच्चे माल पर 12 फ़ीसदी जीएसटी की नयी दरें लागू होगी। पैकेट बन्द और लेबल वाले उत्पादों पर 18 फ़ीसदी की दर से जीएसटी लगाया जायेगा। पहले इस पर सिर्फ़ 5 फ़ीसदी की दर से टैक्स लगता था। यानी खुलेआम क़ानूनी तरीक़े से हमें लूटा जा रहा है।

एक तरफ़ ये सरकार दिनदहाड़े हमसे लूटकर अपने आक़ाओं पर माल लुटा रही है। दूसरी तरफ़ हमारी आय भारतीय रुपये की तरह लगातार गिरती जा रही है। आम आबादी की घटी हुई कमाई का आलम अब ये है कि सबसे ग़रीब 20 प्रतिशत भारतीय परिवारों की सालाना आय पाँच साल में 52 प्रतिशत तक घट गयी है। पिछले चार महीने में देश में बेरोज़गारों की तादाद 3 करोड़ 18 लाख बढ़ी है। एक ताज़ा रिपोर्ट के अनुसार अगर आप रु. 25,000 कमाते हैं तो आप भारत के ऊपरी 10 प्रतिशत आबादी में आते हैं! मज़दूरों का 57 प्रतिशत भारत में रु. 10,000 से कम कमाता है और समस्त उजरती श्रमिकों की बात करें तो उनकी औसत आय रु.16,000 है। निश्चित तौर पर, इसमें सबसे कम कमाने वाले मज़दूर वे हैं जो कि अनौपचारिक व असंगठित क्षेत्र में काम करते हैं और कुल मज़दूर आबादी का क़रीब 93 प्रतिशत बनते हैं।

मोदी सरकार बुलेट ट्रेन की रफ़्तार से पूँजीपतियों के क़र्ज़ क्यों माफ़ कर रही है? दरअसल, इस पूँजीवादी व्यवस्था का आर्थिक संकट गहराता जा रहा है। पूँजीपतियों के मुनाफ़े की दर में गिरावट हो रही है। इस संकट के दौर में भी पूँजीपतियों का मुनाफ़ा बनाये रखा जा सके, इसके लिए सरकार संकट का बोझ आम मेहनतकश जनता पर डाल रही है। एक तरफ़ हमारी मज़दूरी गर्त में धँसती जा रही है और महँगाई आसमान छू रही है और दूसरी तरफ़ पूँजीपतियों के क़र्ज़ों को माफ़ किया जा रहा है। यह संकट पूँजीपतियों की मुनाफ़े की अन्धी हवस से पैदा होता है लेकिन इसका बोझ मेहनतकश आबादी उठाती है।

आप पूछ सकते हैं कि बात तो आपकी ठीक है, पर अब करें क्या? इसे हल करने का कोई शॉर्टकट रास्ता तो है नहीं। इसके लिए हमें लम्बी लड़ाई की तैयारी करनी होगी। साथ ही तात्कालिक मुद्दे जैसे महँगाई को कम करने, सार्वभौमिक राशन वितरण प्रणाली लागू करने जैसे मुद्दों पर इस सरकार को घेरना होगा। जब तक इस पूरी पूँजीवादी व्यवस्था को नहीं उखाड़ा जाता, इसे पूर्णतः समाप्त नहीं किया जा सकता। क्योंकि इस व्यवस्था में सभी सरकारें पूँजीपति वर्ग की मैनेजिंग कमेटी का ही काम करती हैं। क़र्ज़ माफ़ी, सार्वजनिक उद्यमों को बेचना सरकार द्वारा पूँजीपति वर्ग को मैनेज करने के कार्यभार का हिस्सा है।

आज़ादी के अमृत महोत्सव में सड़कों पर तिरंगा बेचती ग़रीब जनता

– भारत

इस बार आज़ादी के 75 वर्ष पूरे होने पर अमृत महोत्सव मनाया गया। यह दीगर बात है कि पिछले 75 वर्षों में देश की व्यापक मेहनतकश जनता के सामने यह बात अधिक से अधिक स्पष्ट होती गयी है कि यह वास्तव में देश के पूँजीपति वर्ग और धनिक वर्गों की आज़ादी है, जबकि व्यापक मेहनतकश जनता को आज़ादी के नाम पर सीमित अधिकार ही हासिल हुए हैं। दाग़दार आज़ादी का उजाला हमारे सामने अँधेरा बनकर मँडरा रहा है। बढ़ती महँगाई, बेरोज़गारी ने तो पहले ही हमारा दम निकाल रखा है। तो सबसे पहले तो यही सोचना चाहिए कि ये महोत्सव किसके लिए है? इसी दौरान मोदी सरकार ने अभियान लिया 'घर-घर तिरंगा' ताकि कुछ समय के लिए लोग रोज़ी-रोटी-रोज़गार भूलकर "राष्ट्रभक्ति" की भावना में लीन हो जायें। एक आबादी इस तिरंगा लहर में बह भी गयी। एक मध्यमवर्गीय आबादी जिनके पास सारी सुख-सुविधाएँ हैं, उनकी तो बड़े से ऊँचे तिरंगे को देखकर राष्ट्रभक्ति की भावना से छाती फूल जाती है। संघी कारकून इसे देशभक्ति के पैमाने के तौर पर पेश कर रहे हैं, यानि जो अपने घर पर तिरंगा न लगाये वो देशद्रोही है। पर पहला सवाल तो इनसे ही पूछा जाना चहिए कि इनका संगठन आरएसएस क्यों आज तक तिरंगे का विरोध करता आ रहा था? इसी बीच पता चलता है कि तिरंगे का 500 करोड़ का कारोबार भी हो गया। आख़िर राष्ट्रभक्ति और धन्धे का तो चोली दामन का साथ है।

'घर-घर तिरंगा' अभियान चला पर सबसे बड़ा मज़ाक़ देखिए, देश में 17,73,040 लोगों के पास घर ही नहीं है। अब ये लोग तिरंगा कहाँ लगायेंगे? राजधानी दिल्ली में ही क़रीब एक लाख लोग बेघर हैं, जो हर मौसम में खुले आसमान के नीचे अपनी रात गुज़ारते हैं। अब बात करते हैं मेहनतकश आबादी के उस हिस्से की जो सड़कों पर इस तिरंगे को बेच रही थी। उत्तर-पश्चिमी दिल्ली के लिबासपुर के हाईवे पर बने रेडलाइट के पास गाड़ी, बस आदि रुकने पर दो बच्चे झण्डा बेच रहे थे। ये क़रीब 13 व 15 साल के थे इनका नाम भीम और ख़ुशी था। उन्होंने बताया कि पिछले साल कोरोना में इनके पिता की मृत्यु हो गयी, जो कि एक फ़ैक्टरी मज़दूर थे। अब अकेले इनकी माँ की कमाई से घर नहीं चल पाता जो एक घरेलू कामगार है। इसी कारण इन्हें भी काम करना पड़ रहा है। इससे पहले भाई-बहन दो काम और कर चुके हैं और अभी झण्डे का सीज़न चल रहा है तो झण्डा बेच रहे हैं। एक झण्डा बेचने पर उन्हें कुछ रुपये मिलते हैं। उन्होंने बताया कि रोज़ दोनों मिलकर 200 रुपये तक कमा लेते हैं। किसी तरह धीरे-धीरे कोरोना के समय का लिया हुआ क़र्ज़ा उतार रहे हैं, पर वो भी उतरता नज़र नहीं आता।

दिल्ली के सराय काले ख़ाँ के पास रहने वाले सरोज ने बताया कि पिछले जून में उनकी झुग्गी को अतिक्रमण के नाम पर तोड़ दिया गया था। 50 और झुग्गियों को तोड़ा गया। इस समय वो खुले आसमान के नीचे रहने को मजबूर हैं और काम धन्धा भी छूट गया है। के सीज़न में वो भी तिरंगा बेच रहे हैं और उनके साथ 20-30 लोग भी यही काम कर रहे हैं, जिनकी झुग्गियाँ टूटी थीं। सुबह से लेकर रात तक हाईवे, सड़कों की ख़ाक छानकर बमुश्किल 300 रुपये कमा पाते हैं। इसके बाद पत्नी और एक बच्चे के साथ खुले आसमान के नीचे "आज़ादी" का लुत्फ़ उठाते हैं।

यह चन्द लोगों की बात नहीं, दिल्ली के लाखों और देश के करोड़ों मेहनतकशों के यही हालात हैं। आज़ादी के अमृत महोत्सव से हमें क्या मिला इसका जवाब यही नज़र आता है – कभी फ़ैक्टरी में आग लगने से मौत, भुखमरी, बेरोज़गारी, महँगाई, हमारी झुग्गियों तक का तोड़ा जाना। बाक़ी कोरोना काल में आपने असल (अ)"मृत" महोत्सव देखा ही होगा, जब गंगा तक इन्सानों की लाशों से अटी पड़ी थी।

भगतसिंह का जन्मदिवस भी इसी महीने पड़ रहा है। उन्होंने भी आज़ादी का सपना देखा था, पर उनकी आज़ादी का सपना ऐसी आज़ादी का नहीं था जो आज हम झेल रहे हैं। बल्कि उनका सपना था एक ऐसे समाज का जहाँ इन्सान द्वारा इन्सान का शोषण तक असम्भव हो जाये। ऐसी "आज़ादी" के बारे में उन्होंने पहले ही आगाह करते हुए कहा था – "कांग्रेस की समझौतापरस्त नीतियों से अगर आज़ादी मिल भी जायेगी तो आम जनता की जीवन स्थिति में कोई सुधार नहीं आयेगा। लॉर्ड इर्विन की जगह अगर सेठ पुरुषोत्तमदास टण्डन आ जाये तो इससे मेहनतकश लोगो की ज़िन्दगी में क्या फ़र्क़ आयेगा?" और अन्त में उनकी एक और बात याद आती है – "हम यह कहना चाहते हैं कि युद्ध छिड़ा हुआ है और यह युद्ध तब तक चलता रहेगा, जब तक कि शक्तिशाली व्यक्ति भारतीय जनता और श्रमिकों की आय के साधनों पर अपना एकाधिकार जमाये रखेंगे। चाहे ऐसे व्यक्ति अंग्रेज़ पूँजीपति, अंग्रेज़ शासक या सर्वथा भारतीय ही हों, उन्होंने आपस में मिलकर एक लूट जारी कर रखी है। यदि शुद्ध भारतीय पूँजीपतियों के द्वारा ही निर्धनों का ख़ून चूसा जा रहा हो तब भी इस स्थिति में कोई अन्तर नहीं पड़ता।"

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधी पुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : अभिनव ● सम्पादकीय पता : 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, ातगंज, लखनऊ-226006